कोयंबत्तुर-प्रवचन

-: प्रवचनकार :-

पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

कोयंबत्तुर-प्रवचन

卐 **प्रवचनकार** 卐

परम शासन प्रभावक, व्याख्यान वाचस्पति, पूज्यपाद
आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचंद्रसूरीश्वरजी महाराजा के
शिष्यरत्न बीसवीं सदी के महान योगी निःस्पृह शिरोमणि
भावाचार्य तुल्य पूज्यपाद पंन्यास प्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**
के कृपापात्र चरम शिष्यरत्न जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर पूज्यपाद
आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

卐 **अवतरणकार** 卐

पूज्य मुनि श्री स्थूलभद्रविजयजी म.सा.

244

卐 **प्रकाशन** 卐

दिव्य सन्देश प्रकाशन
C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor,
बे.व्यु. बिल्डिंग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट,
कालबादेवी, मुंबई-400 002.
Cell 8484848451 (only whatsapp)

हिन्दी आवृत्ति : प्रथम • **मूल्य :** 150/- रुपये • **प्रतियाँ :** 1500
विमोचन तिथि : असाढ सुदी-11, वि.सं. 2080, दि. 17-7-2024
विमोचन स्थल : (चातुर्मास प्रवेश दिन) पोसालिया
(जिला-सिरोही) राज. • **Website :** Divyasandesh.online

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 3000/- रु.

• आप जैन धर्म के रहस्य, जैन इतिहास, जैन तत्त्वज्ञान, जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप **दिव्य संदेश प्रकाशन** मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.*** सा. द्वारा लिखित उपलब्ध 7 पुस्तकें दी जाएंगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें (Open Book Exam साधु–साध्वी उपयोगी पुस्तकें एवं पुनः मुद्रित पुस्तकों को छोड़कर) घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
भायंदर (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल,
चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. राहुल वैद
C/o. अरिहंत मेटल कं.,
4403, लोटन जाट गली,
पहाड़ी धीरज, सदर बाजार,
दिल्ली-110 006.
M. 9810353108

4. चंदन एजेन्सी
607, चीरा बाजार,
मुंबई-400 002.M.9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क
Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन
C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डिंग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक
प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

प्रकाशक की कलम से...

परम शासन प्रभावक, महाराष्ट्र देशोद्धारक पूज्यपाद **आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** के तेजस्वी शिष्यरत्न बीसवीं सदी के महानयोगी नवकार महामंत्र के बेजोड साधक **पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के कृपापात्र चरम शिष्यरत्न मरुधर रत्न पूज्य **आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** आदि-5 ठाणा के ईस्वी सन् 2017 से 2021 तक पांच चातुर्मास दक्षिण भारत के कर्णाटक व तामिलनाडु प्रांत में हुए ।

अपने संयम जीवन के 40 वर्षों में पूज्य श्री का प्रथम बार ही South की ओर विहार था । दक्षिण भारत में रहे अनेक गुरुभक्तों की एवं विविध संघों की दक्षिण भारत में पधारने के लिए पूज्यश्री को अनेक वर्षों से विनंती थी, आखिर वह मंगल घडी आई और ईस्वी सन् 2016 के नासिक चातुर्मास पूर्णाहूति बाद पूज्यश्री ने दक्षिण भारत की ओर अपने कदम उठाए ।

दि. 25/1/2017 के शुभदिन उन्होंने महाराष्ट्र को विदा देकर कर्णाटक की धरती पर मंगल कदम रखा । उसके बाद कर्णाटक के विविध क्षेत्रों में विचरण कर खुब सुंदर शासन प्रभावना की ।

ईस्वी. सन् 2017 में कर्णाटक की राजधानी फूलों की नगरी बेंगलोर में एवं ईस्वी. सन् 2018 में मैसूर संघ में यादगार...चातुर्मास कर दि. 17-3-2019 के शुभ दिन पूज्यश्री

ने तामिलनाडु की धरती पर अपना कदम रखा, उसमें चैत्रमास की ओली में पोरवाल जैन संघ सेलम में निश्रा प्रदान के बाद इरोड़ में एक मास की स्थिरता कर । ईस्वी सन् 2019 के चातुर्मास हेतु कोयम्बत्तूर की धन्यधरा पर पधारें । और वहाँ प्रतिदिन जिनवाणी की वर्षा की ।

चातुर्मास दरम्यान पूज्य आचार्य भगवंत के प्रेरणादायी प्रवचन हुए । उन प्रवचनों का सार **पू.मु. श्री स्थुलभद्रविजयजी म.** अवतरित करते थे जो कोयम्बत्तूर से प्रकाशित **``राजस्थान पत्रिका''** एवं **`दक्षिण भारत-राष्ट्रमत'** में नियमित प्रकाशित होता था ।

पर्वाधिराज तक के प्रवचनों का सारभूत अवतरण प्रस्तुत पुस्तक में छपा है । उसके बाद के प्रवचनों का अवतरण निकट भविष्य में प्रकाशित होगा ।

हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि इन प्रवचनों का स्वाध्याय पाठकों के अन्तर्मन को छुए बिना नहीं रहेगा ।

– परिशिष्ट 1 में कोयम्बत्तूर-चातुर्मास के मुख्य समाचारों की झांकी दी गई है । **चातुर्मास के मुख्य आयोजक श्रीमती दाखोबाई चांदमलजी बाफना-(सादडी-राज. निवासी)** थे । जिन्होंने खूब उदारता से लक्ष्मी का सद्व्यय किया था ।

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृ.नं.	क्र.	विषय	पृ.नं.
1.	शिक्षण शैली	1	24.	धर्म में श्रद्धा की नींव जरूरी है	44
2.	पू.आ.श्री विजयानंदसूरिजी	2	25.	मानव-मन कभी तृप्त नहीं होता	46
3.	अरिहंत के समस्त गुणों का वर्णन अशक्य है	4	26.	युवावस्था में गुरुमाँ का साथ जरुरी है	48
4.	सभी जीवों को सुख पसंद है	6	27.	सभी के आत्मकल्याण की भावना सर्वश्रेष्ठ है	50
5.	धर्मप्राप्ति के लिए श्रवणेन्द्रिय की अखंडता जरुरी है ।	7	28.	दु:ख से भी सुख खतरनाक है	52
6.	प्रभु के नामस्मरण से पापकर्म के बंधन टूट जाते हैं	9	29.	चातुर्मास की महत्ता	54
7.	पाप के नाश से दु:ख का नाश	11	30.	आत्म जागृति के लिए है वर्षावास का चातुर्मास	55
8.	पुण्य पावन करे, पाप पतन करे	13	31.	वनस्पति के समान है मानवीय मन	57
9.	अज्ञान के अंधकार का नाश करना है	15	32.	देव और गुरु हैं सबसे बड़े उपकारी	59
10.	आहारसंज्ञा से मुक्ति हेतु तपधर्म की आराधना	17	33.	श्रावक जीवन की महत्ता	61
11.	मन पानी जैसा है	19	34.	आषाढ़ी चातुर्मास की महिमा	63
12.	इन्द्रियों के संयम से मोक्ष, असंयम से संसार	21	35.	चातुर्मास के कर्त्तव्य	65
13.	कर्मक्षय हेतु तप का आलंबन	23	36.	श्रावक के 36 कर्तव्य	67
14.	समय सबके पास एक समान है	24	37.	जिनवाणी का श्रवण अवश्य करें	69
15.	मोक्ष का परम साधन: सामायिक धर्म	26	38.	तीर्थंकर का पुण्य स्व-पर को हितकारी होता है	71
16.	जो झुकता है, वही पाता है	28	39.	विनयगुण के सर्वश्रेष्ठ आदर्श	73
17.	तप धर्म से कठिन कर्मों का क्षय	30	40.	समाधिमरण जरूरी है	75
18.	फुटबॉल की तरह आत्मा संसार में लातों की मार खाती है :	32	41.	परमात्मा ही आत्मा के सच्चे संबंधी है	77
19.	दु:खों का मुख्य कारण कर्म है	34	42.	आत्मा का सुख अनंत है	79
20.	मुफ्त में कुछ भी नहीं मिलता है	36	43.	प्रभु की आज्ञा पर विश्वास खूब जरूरी है	81
21.	सबसे अधिक कीमती आत्मा है	38	44.	स्वाध्याय से दूर होती है मन की चंचलता	83
22.	आत्मा के रोगों की चिंता करें	40	45.	अंतरंग शत्रुओं को जीतना अति कठिन है	85
23.	श्री जीरावला पार्श्वनाथ भगवान की महिमा	42			

क्र.	विषय	पृ.नं.	क्र.	विषय	पृ.नं.
46.	धर्म ही आत्मा का सच्चा साथी है	87	67.	पाप का मुख्य कारण है, धन का लोभ	130
47.	माता-पिता के उपकार चुकाये नहीं जा सकते	89	68.	श्रावक के लिए सामायिक की आराधना	133
48.	परमात्मा के अभिषेक से आत्मा निर्मल बनती है	92	69.	14400 आयंबिल के तपस्वी थे आचार्य श्री राजतिलकसूरिजी	135
49.	रसनेन्द्रिय जय का उपाय है आयंबिल तप ।	94	70.	दीपक के समान स्व-पर प्रकाशक है ज्ञान	137
50.	सत्त्वशाली थे आचार्यश्री रामचन्द्रसूरीश्वरजी	96	71.	रसना-विजय का श्रेष्ठ उपाय है तप धर्म	139
51.	विनय से प्राप्त होता है सम्यग्ज्ञान	98	72.	दर्प और कंदर्प आत्मा के बड़े शत्रु हैं	141
52.	अपनी योग्यता विकसित करें	100	73.	दृष्टिदोष से मुक्त बनें	143
53.	संसार दावानल के समान है	102	74.	क्रोध की आग, जीवन बाग को भस्म करती है	145
54.	वाद और स्वाद ही सभी समस्याओं का कारण हैं	104	75.	शुद्ध धर्म की आराधना मात्र मनुष्य ही कर सकता है	147
55.	जन्म कल्याणक की आराधना से जन्म का अंत	106	76.	विवेक चक्षु के अभाव में क्रोधी भी अंधा है	150
56.	कर्मसत्ता न्याय करती है	108	77.	तीर्थंकर भी श्रीसंघ को वंदन करते हैं	152
57.	परमात्मा पर श्रद्धा जरुरी है:	110	78.	श्री कल्पसूत्र का एक-एक शब्द महामंगलकारी है	154
58.	दानी का स्थान सदैव ऊँचा रहता है	112	79.	तीर्थंकरों की माताएँ 14 महास्वप्नों को देखती हैं	155
59.	सभी जीवों को जीना पसन्द है, मरना नहीं	114	80.	पर्युषण पर्व का सार है-क्षमापना	157
60.	धर्म ही परम मंगल है	116	81.	क्षमापना सच्चे हृदयपूर्वक होनी चाहिए	159
61.	श्रद्धा से आते हैं परमात्मा हृदय मंदिर में	118	82.	पर्वाधिराज महापर्व की सफलता का राज	161
62.	कषाय से बढ़ता है हमारा भावी संसार:	120	83.	परिशिष्ट	163
63.	त्याग से भी वैराग्य कठिन है	122			
64.	गुणों के विकास से ही धर्मी बन सकते है	124			
65.	भीतर के अंधकार को दूर करना जरूरी है	126			
66.	चिंता छोड़ो-सुख से जीओ	128			

1

शिक्षण शैली

आर.जी.स्ट्रीट-कोयंबत्तुर **दि. 09-6-2019**

इस देश में `जिस अहिंसा धर्म का पालन सम्राट् कुमारपाल महाराजा ने कराया था, वह महावीर प्रभु के अस्तित्व काल में भी न हो पाया था ! उन्होंने जो धर्म का पालन, रक्षण और प्रभावना की है, वो कोयंबत्तुर के सभी लोग मिलकर भी नहीं कर सकते हैं । उनकी इस आराधना का कारण उनकी धर्म पर अटूट श्रद्धा थी ! उनकी श्रद्धा के पीछे उसका धर्मशास्त्रों का गहन अध्ययन था । 70 वर्ष की उम्र में भी उन्होंने संस्कृत भाषा का अभ्यास करके प्रभु-स्तुतियों की रचना की थी ! आज 900 वर्षों के बाद भी उन्हें प्रतिदिन याद करते हैं, उसके पीछे उनकी धर्मश्रद्धा की अटलता थी ।

समय बीतता गया, मुगल बादशाहों एवं अंग्रेजों के राज्य में इस देश में अनेक लोगों को जबरदस्ती धर्मान्तरण कराने का प्रयास किया गया, परंतु लोगों के मन में धर्म-श्रद्धा जीवित थी, अतः मौत के सामने लड़कर भी धर्म-श्रद्धा में कमी आने नहीं दी ।

आज, देश में पश्चिमी संस्कृति के अंधानुकरण एवं विज्ञान के साधनों के जोर-शोर के प्रचार से लोगों के मन में धर्म-श्रद्धा का नाश होता गया है । अंग्रेजी भाषा एवं अंग्रेजी जीवन शैली से हम इतने प्रभावित हो गए हैं कि हमें हमारे धर्म और देश की भाषा का ज्ञान भी नहीं रहा । प्राकृत और संस्कृत भाषा एवं देशी पहनावे रूप धोती-कुर्ता और पगड़ी को भूल गए हैं ।

इन सभी का मुख्य कारण है कि हमने हमारी शिक्षण शैली को छोड़ दिया है । धर्मग्रंथों पर श्रद्धा को टिकाने के लिए हमें उन धर्म ग्रंथों का स्वाध्याय कर, उनके वचनों पर श्रद्धा जगानी होगी ।

प्रभु के जैसा बनने के लिए हमें प्रभु के पास जाना है और गुरु के जैसा बनने के लिए ही सद्गुरु के पास जाना है । उनके पास से ज्ञान, दर्शन और चारित्र की प्राप्ति करके पानी में मिली शक्कर की तरह परमात्मा में समा जाना है ।

2 पूज्य आचार्य श्री विजयानंदसूरिजी

आर.जी.स्ट्रीट-कोयंबत्तुर **दि. 10-06-2019**

दित्ता बचपन से ही पराक्रमी एवं शूरवीर था । स्थानकवासी मुनियों के उपदेश से मन में वैराग्य की ज्योत प्रकट हुई । दीक्षा स्वीकार कर वे मुनि आत्मारामजी बने, अल्पवय में उन्होंने 32 आगम ग्रंथों को कंठस्थ कर लिया था ।

वे 22 वर्ष तक स्थानकवासी परंपरा में रहे, फिर जिन प्रतिमा के संदर्भ में सत्यबोध होने पर वि.सं. 1932 में संवेगी दीक्षा स्वीकार की, फिर 10 वर्ष बाद आचार्य बने !

उनके जीवन में अपूर्व सहनशक्ति थी, वे शास्त्र एवं सत्य के पक्षपाती थे । संयमजीवन की साधना में निर्दोष जीवन जीकर उन्होंने संयम और त्याग की अलख जगाई थी ।

ई.सन् 1993 में सर्व प्रथम बार अमेरिका के चिकागो शहर में सर्व धर्म परिषद् का आयोजन किया गया था । इसमें भाग लेने के लिए जैन धर्म के प्रतिनिधि के रूप में पूज्य आचार्यश्री विजयानंदसूरिजी को आमंत्रण मिला था । जैन साधु की आचार-संहिता का पालन करते हुए स्टीमर आदि वाहन के माध्यम से चिकागो की इस परिषद में भाग लेना संभव नहीं था ।

धर्म-प्रचार के प्रलोभन में आकर उन्होंने श्रमण-धर्म की मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं किया । उनके मन उपदेश से भी आचार-पालन की प्रभावकता का महत्त्व अधिक था । अतः उन्होंने **विश्वधर्म परिषद्** में भाग लेने से इन्कार कर दिया । तब उनकी विद्वत्ता और महानता से प्रभावित होकर एक प्रतिनिधि को भेजने के लिए आमंत्रण दिया ।

श्रीसंघ में से सूक्ष्म प्रज्ञा, नम्रता एवं विशिष्ट वक्तृत्व शैली आदि के धनी वीरचंद राघवजी गांधी को पसंद किया गया । पूज्य आत्मारामजी ने उन्हें धर्म का गहन अभ्यास कराया, फिर विश्व धर्म परिषद् में भेजा ।

अपने प्रभावक प्रवचनों से वीरचंदभाई ने अमेरिकावासियों को जैन धर्म के गूढ़ार्थ समझाकर जैन धर्म की अभूतपूर्व प्रभावना की, जिसका श्रेय आचार्य श्री विजयानंदसूरिजी को जाता है । जीवन के अंत समय गुजरानवाला (वर्तमान पाकिस्तान) में 123 वर्ष पूर्व, सभी जीवों को क्षमा प्रदान करते **अर्हम् पद** में मन को स्थिर कर इस दुनिया से चिरविदाई ली । उनके द्वारा किये गए उपकारों को भुलाना शक्य नहीं है ।

सिद्ध पद

आत्मा के शत्रुभूत आठ कर्मों का संपूर्ण क्षयकर अनंत ज्ञान आदि आत्मिक-शक्तियों के भोक्ता बने अनंत सिद्ध भगवंतों को भाव से नमन करें । उनका ध्यान करे– जो सदा के लिए जन्म-जरा और मृत्यु से मुक्त होकर अजर– अमर और अविनाशी पद के भोक्ता बने है ।

वैराग्य

जिसका वैराग्य परिपक्व होगा, वह कहीं भी जाएगा, उसे कोई भयस्थान नहीं है, परंतु जिसका वैराग्य कच्चा है, उसे तो कदम-कदम पर भय है । कोई भी अशुभ निमित्त उस आत्मा का पतन करा सकता है । वैराग्य के दृढ़ीकरण के लिए सद्गुरु का समागम, जिनवाणी का श्रवण, सत्साहित्य का स्वाध्याय और अनित्य आदि भावनाओं से आत्मा को भावित करना होगा ।

3 अरिहंत के समस्त गुणों का वर्णन अशक्य है

आर.जी.स्ट्रीट-कोयंबत्तुर **दि. 11-06-2019**

पाँवों से पंगु व्यक्ति के लिए बडे जंगल को पार पाना शक्य नहीं है, वैसे ही अरिहंत परमात्मा के समस्त गुणों को जानना या वर्णन करना, शक्य नहीं है ।

लाखों वर्षों का आयुष्य हो, आत्मा के भीतर केवलज्ञान का प्रकाश हो एवं मुख में हजारों जीभ हों तो भी अरिहंत परमात्मा के समस्त गुणों का वर्णन शक्य नहीं है ।

32 लाख देव विमानों के अधिपति सौधर्म इन्द्र भी परमात्मा के जन्म समय अपने विशाल देवी-देवताओं के परिवार के साथ परमात्मा को मेरु पर्वत पर ले जाकर जन्माभिषेक करते हैं ।

उनका अनुकरण करते हुए आपको भी देवों के जैसा बनकर प्रतिदिन प्रभु का अभिषेक करना चाहिए । अपनी लघुता बताते हुए सौधर्म इन्द्र परमात्मा के समक्ष बैल का रुप करके जन्माभिषेक करते हैं । बैल का रूप करते हुए बताते हैं कि मैं आपके आगे बैल के समान अल्पबुद्धिवाला हूँ ।

ऐसे अरिहंत परमात्मा के सर्वश्रेष्ठ दो गुण हैं । वे वीतराग और सर्वज्ञ हैं ।

आत्मिक विकास के लिए हमारे जीवन में आराध्य देव और सद्गुरु भगवंत की छत्रछाया होना जरूरी है ।

मात्र चमत्कारों के आगे अपना सिर नहीं झुकाना है । दुनिया तो जहाँ चमत्कार देखती है, वहाँ नमस्कार कर देती है । परंतु चमत्कार के द्वारा आकर्षित होकर अपने आराध्य देव एवं गुरु को स्थापित नहीं करना है ।

भोजन करते सब्जी बिगड़ जाए तो एक बार का भोजन बिगड़ता है । महिने भर कड़ी मेहनत करने के बाद यदि पगार न मिले तो महिना

बिगड़ जाता है । व्यापार की सीजन के समय बीमारी के कारण व्यापार न कर सके, तो वर्ष बिगड़ जाता है । जीवनसाथी की पसंदगी में भूल हो जाय तो जिंदगी बिगड़ जाती है । ये नुकसान कोई बड़े नुकसान नहीं हैं ।

परंतु आराध्य देव और सद्गुरु की परीक्षा में भूल हो जाय तो जन्मोजन्म बिगड़ जाते हैं । उनकी पसंदगी करने में हमें मात्र बाह्य आकर्षण और चमत्कार नहीं देखने हैं, परंतु उनके गुणों को जानना चाहिए ।

जैनधर्म व्यक्तिप्रधान नहीं, परंतु गुणप्रधान है । जिनमें वीतरागता और सर्वज्ञता है, वे ही हमारे आराध्य देव होने चाहिए एवं जो वीतराग परमात्मा के द्वारा बताए पंच महाव्रतों का दृढ़ता से पालन करते हुए कंचन और कामिनी के सर्वथा त्यागी हैं, वे ही हमारे सिर पर सद्गुरु के रूप में होने चाहिए ।

कस्तूरी मृग

अपनी नाभि में कस्तूरी होने पर भी
कस्तूरी मृग उसकी सुगंध पाने के लिए
चारों ओर दौड़ लगाता है,
आखिर उसे हताशा ही हाथ लगती है ।
बस, सच्चा सुख आत्मा के भीतर होने पर भी
उस सुख को पाने के लिए
संसारी जीव बाहर भटकता है ।
परिणाम स्वरुप उसे सुख तो नहीं मिलता है,
उसका श्रम भी निष्फल जाता है और
अंत में हैरान होकर दुःखी-दुःखी हो जाता है ।

4

सभी जीवों को सुख पसंद है

आर.जी.स्ट्रीट-कोयंबत्तुर **दि. 12-06-2019**

संसार में रही सारी आत्माओं को किसी-न-किसी प्रकार का भय रहा हुआ है । चोर, लुटेरे, डाकुओं से बचने के लिए हर कोई रात्रि में अपने घर के दरवाजे बंद कर देते है । जवेरात के व्यापारी अपनी रक्षा के लिए बंदूकधारी सुरक्षाकर्मी को रखते हैं । पक्षीगण घोसला बनाकर अपनी रक्षा करते हैं । सभी जीव किसी न किसी प्रकार से अपनी सुरक्षा पाने का प्रबंध करते हैं ।

सभी जीव में चेतना होने से सुख-दुःख की संवेदना होती है । सर्वज्ञ परमात्मा ने न सिर्फ चलते-फिरते जीवों में चेतना बताई है, बल्कि पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति में भी चेतना बताई है । चेतना के कारण ही सभी जीवों को मात्र सुख पसंद है और दुःख से द्वेष है । जैसे हमें सुख प्यारा है, वैसे ही सभी जीवों को सुख प्यारा होने से हमें किसी भी जीव को दुःख हो ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए ।

विज्ञान ने अनेक संशोधनों के माध्यम से वनस्पति में चेतना की सिद्धि की है, परंतु उनके प्रति दया का भाव नहीं है । जबकि करुणा-निधान वीतराग परमात्मा के मन सभी जीवों के प्रति दया भाव होने से उनकी रक्षा के लिए उन्होंने व्रत-नियमों के पालन का आचार बताया है । जीवों के प्रति रहीं जीवदया परम पुण्य का कारण बनती है ।

तीर्थंकर भगवान भी अपने पूर्व के तीसरे भव में सभी जीवों के मोक्षगमन की सर्वोच्च भावना रूप भावदया का ही आश्रय लेते हैं । इस भावदया के द्वारा ही उन्हें ऐसी शक्ति प्राप्त होती है कि वे जगत् के जीवों का कल्याण कर सकें ।

धरती और आकाश का भी कहीं-न-कहीं अंत आ जाता है । बड़े समुद्र और महाद्वीप का भी कहीं-न-कहीं अंत आ जाता है । परंतु करुणानिधान तीर्थंकर परमात्मा की करुणा का कोई अंत नहीं आता है । ऐसे तीर्थंकर परमात्मा के बताए धर्ममार्ग पर चलकर ही हम हमारी आत्मा का कल्याण कर सकते हैं ।

5

धर्मप्राप्ति के लिए श्रवणेन्द्रिय की अखंडता जरुरी है ।

आर.जी.स्ट्रीट-कोयंबत्तुर **दि. 13-06-2019**

आत्मा में धर्म का बीजारोपण करने के लिए बाह्य और अंतरंग दोनों योग्यता और पात्रता जरूरी हैं ।

जैसे मिट्टी के कच्चे घडे में पानी भरने पर पानी नष्ट होता है और घडा भी फूट जाता है । वैसे ही धर्म के बीजारोपण रूप धर्मोपदेश देने के लिए जीवों में योग्यता और पात्रता होना खूब जरूरी है ।

बाह्य योग्यता के रूप में श्रवण इन्द्रिय की प्राप्ति एवं श्रवण शक्ति की अखंडता चाहिए । यदि श्रवण इन्द्रिय की प्राप्ति न हो तो परमात्मा के वचनों की प्राप्ति नहीं होती ।

वे ही जीव धर्म का आचरण कर सकते हैं, जो देव-गुरु के उपदेशों को श्रवण कर सकते हो । जीवन के अंत समय में भी वो ही समाधि भाव में स्थिर रह सकता है, जो नवकार महामंत्र आदि धर्म के वचन सुन सकता हो ।

जवानी के नशे में व्यक्ति को जिन-वचन सुनने की इच्छा नहीं रहती और जीवन के अंत समय में जब श्रवण इन्द्रिय नष्ट हो जाती है तब सिर्फ पश्चात्ताप ही शेष रह जाता है ।

मात्र धर्मश्रवण करना ही पर्याप्त नहीं है, श्रवण के बाद उन वचनों का यथाशक्य आचरण भी जरूरी है ।

व्यक्ति अपने बचपन में तो नम्र रहता है, परंतु युवा अवस्था आते ही जीवन में से नम्रता चली जाती है । व्यक्ति के जीवन में अधिकतम पाप कर्म का आचरण युवा अवस्था में ही होता है ।

बचपन में पापाचरण नहीं होते है क्योंकि बच्चा निर्दोष होता है, उसके मन में कोई पाप नहीं होता है । उसकी शक्ति भी अल्प होती है । वैसे ही वृद्धावस्था में भी पापाचरण की विशेष शक्ति नहीं होती है ।

जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण है **'युवा अवस्था ।'** युवा अवस्था में जिसने अपने जीवन में नम्रता और संयम रखा है, उसके जीवन का उत्थान हो सकता है ।

युवा अवस्था में मन, वचन और काया, तीनों सतेज होते हैं । उसमें भी मन बहुत ही शक्तिशाली होने से अमाप पापाचरण मन से हो जाते है । मन की चंचलता और अपवित्रता के दोषों को नष्ट करने हेतु परमात्मा के वचनों को सद्गुरु के माध्यम से धर्मश्रवण करना होगा एवं परमात्मा की भक्ति में जुड़ना होगा ।

सज्जन-दुर्जन

सहजता से बोले गए सज्जन के शब्द शिलालेख
के समान होते हैं, सौगंधपूर्वक भी
बोले हुए दुर्जन के शब्द
जल की रेखा के समान होते हैं ।
सज्जन बदलता नहीं है और
दुर्जन को बदलते देर नहीं लगती है ।
जगत् में सज्जन के थोड़े भी शब्दों की कीमत है,
परंतु दुर्जन के शब्दों का कोई मूल्य नहीं है ।

6

प्रभु के नामस्मरण से पापकर्म के बंधन टूट जाते हैं

आर.जी.स्ट्रीट-कोयंबत्तुर **दि. 14-06-2019**

तीर्थंकर परमात्मा इस जगत् में परम उपकारी हैं । समस्त जीवों को सदाकाल सुखी बनाने की शुभ भावना से तीर्थंकर पद प्राप्त आत्माओं के च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण समय में जगत् के सभी जीवों को सुख का अनुभव होता है । देव और मनुष्य ही नहीं, बल्कि तिर्यंच और नरक के जीवों को भी सुख का अनुभव होता है । उनके आलंबन से अनेक भव्यात्माएं कर्मों का क्षय करके शाश्वत पद-मोक्ष को प्राप्त करती हैं ।

उनकी साक्षात् उपस्थिति से तो हमारी आत्मा पर उपकार होता ही है, बल्कि उनकी पूर्व एवं पश्चात् अवस्था तथा उनका नाम एवं उनकी प्रतिमा के आलंबन से भी हमारी आत्मा पर उपकार होता है ।

दुनिया की हर वस्तु अपने मूल अस्तित्व से ही अपना फल देने में समर्थ है । जैसे मात्र फल की तस्वीर से कभी क्षुधा की तृप्ति नहीं होती अथवा न ही फल का नाम लेने से क्षुधा तृप्ति होती है । परंतु परमात्मा का अतिशय ऐसा है कि उनकी प्रतिमा की पूजा से हमें, साक्षात् परमात्मा की पूजा का फल होता है । पूजा या मंत्रोच्चार तो दूर रहा, परमात्मा के नाम-स्मरण से भी हमारे पापकर्म के जटिल बंधन टूट जाते हैं ।

परमात्मा के विरह में परमात्मा की प्रतिमा हमें उनके स्वरूप का परिचय कराती है । भले हमें साक्षात् रूप में परमात्मा की प्राप्ति नहीं हुई है, फिर भी परमात्मा की प्रतिमा स्वरूप में प्राप्ति, परमात्मा की साक्षात् प्राप्ति से कम नहीं है ।

यहाँ के मुलनायक परमात्मा श्री सुपार्श्वनाथ भगवान इस अवसर्पिणी में हुए 24 तीर्थंकरों में सातवें तीर्थंकर थे । वे काशी देश की वाराणसी नगरी के प्रतिष्ठित राजा एवं पृथ्वी रानी के पुत्र थे । सुवर्ण जैसे उज्ज्वल पीले वर्ण की उनकी काया थी । उनके शरीर पर स्वस्तिक का चिह्न था । उनके शरीर की ऊँचाई 200 धनुष थी ।

युवा अवस्था प्राप्त करने पर एक हजार राजकुमारों के साथ दीक्षा स्वीकार करके, 9 महीनों तक कष्टों को सहन कर केवलज्ञान प्राप्त किया । अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर 20 लाख पूर्व का आयुष्य पूर्ण कर सम्मेदशिखर महातीर्थ पर एक मास का अनशन करके शाश्वत मोक्ष पद को प्राप्त किया था ।

करोड़ों वर्ष बीतने पर भी आज भी उनका नामस्मरण, उनकी पूजा, भक्ति, आराधना और उपासना हमारे भव के बंधनों को तोड़ने के लिए हमें आलंबन प्रदान करती है । यह उनका हम पर साक्षात् उपकार हैं ।

सज्जन

सज्जन पुरुष का स्वभाव चंदन के समान होता है ।
चंदन को घिसो, काटो या जलाओ, वह मात्र सुगंध ही देता है । चंदन को छीलने वाले
वसूले को भी चंदन सुगंधित कर देता है ।
दुर्जन पुरुष का स्वभाव काँटे की भाँति होता है ।
काँटे को छूए तो भी वह दुःख देता है ।
काँटों के संपर्क में दुःख है और
चंदन के संपर्क में सुगंध ही सुगंध है ।

7

पाप के नाश से दुःख का नाश

आर.जी.स्ट्रीट-कोयंबत्तुर **दि. 15-06-2019**

दुनिया के समस्त जीवों की एक मात्र इच्छा है, **'मेरा दुःख दूर हो और मुझे सुख की प्राप्ति हो ।'** परंतु दुन्यवी साधनों में कहीं भी सुख प्राप्त नहीं होता और दुःख दूर नहीं होता ।

दुःख का सीधा संबंध, पूर्व में किये हुए पाप से हैं । पाप का नाश होने पर दुःख स्वतः नष्ट हो जाता है और सुख सामने से चलकर पास आता है । गृहस्थ जीवन में रहे व्यक्ति को कदम-कदम पर हिंसा, झूठ, चोरी...आदि अठारह प्रकार के पापों का आचरण करना पड़ता है । इन पापस्थानकों से सर्वथा मुक्त होने के लिए वीतराग परमात्मा ने साधुजीवन का मार्ग बताया है ।

साधुजीवन का मूलाधार वैराग्य भाव है । जैसे साँप के मुँह में से जहर की थैली निकाल दी जाए, तो उस साँप से कोई खतरा नहीं रहता है । वैसे ही जीवन में, संसार के भौतिक सुखों के प्रति रहा आकर्षण भाव समाप्त हो जाय और अन्तर्मन में वैराग्य भाव आ जाय, तो साधुजीवन के बाह्य कष्टों को सहन करना खूब आसान हो जाता है ।

दुःख के प्रति वैराग्य तो प्रत्येक जीवात्मा में हमेशा से रहा हुआ है, परंतु संसार के सुखों के प्रति वैराग्य होना कठिन है ।

गृहवास में रहते हुए प्रत्येक व्यक्ति को धन की आवश्यकता रहती है और धन को पाने के लिए हिंसा, झूठ और चोरी का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से आचरण करना ही पड़ता है ।

एक बार के भोजन को पकाने में असंख्य त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा होती है । इससे बचने के लिए साधुजीवन का आचरण है, जिसमें भोजन को पकाने का त्याग है और भिक्षावृत्ति से जीवन का निर्वाह है ।

साधुजीवन में मात्र हिंसा का ही त्याग नहीं है, बल्कि क्रोध, लोभ, भय और हास्य के कारण बोले जाने वाले झूठ का भी त्याग है। वे मात्र हितकारी सत्य वचनों को ही बोलते हैं।

मालिक के द्वारा न दी गयी अल्प भी वस्तु को वे ग्रहण नहीं करते हैं।

उनके जीवन में संपूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन है। उनके सारे महाव्रतों में ब्रह्मचर्य सबसे महत्त्वपूर्ण है, इसलिए ब्रह्मचर्य के व्रत की सुरक्षा के लिए नौ प्रकार के विशेष नियम का पालन है। ब्रह्मचर्य में बाधक रूप पाँच इन्द्रियों के विषय भोगों का भी त्याग है।

विषय भोगों के साथ उनके कारण रूप धन-वैभव-घर-संपत्ति-दुकान आदि हर प्रकार के परिग्रह का त्याग है।

सारी दुनिया अन्याय-अनीति से कमाए पैसों को पाप मानती है, जबकि जैन धर्म में पैसे को ही पाप माना है और इसलिए साधुजीवन में धन का सर्वथा त्याग है।

जैसे अंधे व्यक्ति को आँख पाने की, रोगी को आरोग्य पाने की एवं धनहीन को धन पाने की तड़फ रहती है, वैसे ही प्रत्येक श्रावक के मन में साधुजीवन को पाने की तड़फ होनी चाहिए। इस तड़फ के साथ परमात्मा को प्रार्थना करने से पापमुक्त जीवन रूप साधु-जीवन की अवश्य प्राप्ति होती है।

सच्चा स्वामित्व

जिस धन का आप दान कर सकते हैं,
सच मायने में आप उतने ही धन के मालिक हो।
बाकी रहे धन के तो आप चौकीदार ही हो।
चौकीदार धन का रक्षण करता है, लेकिन उपभोग नहीं।
वर्तमान दुनिया में धन के मालिक विरले होते हैं,
परंतु धन के चौकीदार तो कदम-कदम पर मिल जाएंगे।
धन के मालिक बनें, चौकीदार नहीं !

8

पुण्य पावन करे, पाप पतन करे

आर.जी.स्ट्रीट-कोयंबत्तुर **दि. 16-06-2019**

आत्मा को पावन बनाए वह पुण्य और आत्मा का पतन कराए वह पाप । समस्त पाप कर्मों का मूल है संसार का मोह । आठ प्रकार के कर्मों में सबसे अधिक शक्तिशाली मोहनीय कर्म है । इस कर्म के कारण आत्मा को सत्य-असत्य विषय में भ्रम होता है ।

मोह के वश रही आत्मा, अनुकूल प्रसंगों में राग और प्रतिकूल प्रसंगो में द्वेष करती रहती है । राग-द्वेष के वश होकर क्रोध-मान-माया और लोभ रूपी चार कषायों से पाप कर्मों में तीव्रता आती है ।

क्रोध करने से हमारे भीतर रहे क्षमापना का भाव नष्ट हो जाता है । जैसे अग्नि सर्वभक्षी है, वैसे ही क्रोध भी सर्वभक्षी है । करोड़ों वर्षों के संयम और तप के आचरण को भी क्षण भर में नष्ट करने की शक्ति क्रोध में है । क्रोध के कारण जीवों के प्रति रही प्रीति और मैत्री का भाव नष्ट हो जाता है, अतः क्रोध से बचने के लिए क्षमाभाव को आत्मसात् करना चाहिए ।

मान करने से विनय गुण नष्ट होता है । अभिमानी व्यक्ति किसी के अधीन नहीं रह सकता है । दुनिया में नियम है कि जो झुकता है वही कुछ प्राप्त करता है । अभिमानी किसी के आगे झुक नहीं सकता, अतः वह गुण की प्राप्ति और दोषों का नाश नहीं कर सकता है । अतः आत्मविकास में आगे नहीं बढता है । जिस विषय का हम अभिमान करते हैं, अगले जन्म में उसी विषय की हमें हानि होती है ।

माया यानी वक्रता । मायावी व्यक्ति के मन में कुछ और होता है और दिखावा कुछ और करता है । ऐसे व्यक्ति का विश्वास करने से अवश्य ही धोखा होता है । माया, आत्मा के संसार को पैदा करने वाली माता है । सरल बनकर इस माया के पाप को समाप्त करना चाहिए ।

लोभ सभी पापों का बाप है । लोभ से सभी गुणों का नाश होता है । अपने लोभ को तृप्त करने के लिए व्यक्ति किसी भी कठिन कार्य को

करने के लिए तैयार हो जाता है । लोभ का त्याग कर संतोषी नर ही सुखी बन सकता है ।

चार कषायों के कारण ही कलह का पाप होता है । वस्तु के प्रति रहे ममत्व के कारण वस्तु के चले जाने पर वह झगड़े का कारण बनती है । जमीन-जायदाद को पाने के लिए सगे भाई भी बड़े युद्ध करने के लिए तैयार हो जाते हैं । इससे अतिरिक्त झूठा आरोप देना, चुगली करना, माया पूर्वक झूठ बोलना आदि भी खतरनाक पाप हैं । इन पापों के कारण अनेक महासतियों को अपने जीवन में मरणांत कष्टों को सहन करना पड़ा है ।

सुख के राग और दुःख के द्वेष से हमारी आत्मा ने खूब-खूब कर्मों का बंध किया है । इन सारे पापों से शाश्वत काल की मुक्ति तो मोक्ष में है । ऐसे मोक्ष को पाने के लिए दर्शन, ज्ञान और चारित्र की आराधना सर्वश्रेष्ठ है । परमात्मा के दर्शन से आत्मा के सम्यग्दर्शन गुण को शुद्ध करना है, गुरु भगवंतों की सेवा-शुश्रूषा से ज्ञान की प्राप्ति करनी है एवं दयाप्रधान धर्म से चारित्र प्राप्त करना है ।

संपूर्ण निष्पाप जीवन स्वरूप चारित्र धर्म को प्राप्त करने एवं पूर्व के आचरित पापों से मुक्त होकर मोक्ष की प्राप्ति के लिए परमात्मा से भावविभोर होकर प्रार्थना करनी चाहिए ।

ब्रह्मचर्य

मासक्षमण आदि बाह्यतप करना
आसान है, परंतु ब्रह्मचर्य का पालन
करना अत्यंत कठिन है ।
तप भी शील के पालन पूर्वक होता है,
तब उस का बल बढ़ जाता है ।
महापुरुषों ने ब्रह्मचर्य को सर्वश्रेष्ठ तप कहा है ।

9 अज्ञान के अंधकार का नाश करना है

आर.जी.स्ट्रीट-कोयंबत्तुर **दि. 17-06-2019**

केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् तीर्थंकर परमात्मा, देवों द्वारा निर्मित समवसरण में प्रतिदिन दिन के प्रथम और अंतिम प्रहर में धर्मदेशना प्रदान करके जगत् के जीवों पर परम उपकार करते हैं । गणधर भगवंत उनकी धर्मदेशना को सूत्र के रूप में रचना करते हैं । उसके बाद पूर्वधर महापुरुष एवं आचार्य आदि उन आगमसूत्रों का अर्थ समझने के लिए अनेकविध प्रकरण ग्रंथों की रचना करते है ।

पूज्य उमास्वातिजी महाराज ने 500 ग्रंथों की रचना की थी । कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्यजी महाराज ने अपने जीवन में साढ़े तीन करोड श्लोक संस्कृत-प्राकृत साहित्य का सर्जन किया था । पूज्य हरिभद्रसूरीश्वरजी महाराज ने 1444 ग्रंथों का निर्माण कर हम जैसे अज्ञानी जीवों पर परम उपकार किया है ।

धर्मग्रंथों की रचना करके वे स्वयं का आत्महित तो करते ही हैं, साथ ही भव्य जीवों के बोध द्वारा परमार्थ भी करते हैं । आगम ग्रंथों के श्लोक सूत्र रूप में होते हैं । ये सूत्र एक प्रकार के सूत के धागे हैं, जो हमारे मन को बाँधने का श्रेष्ठ उपाय है ।

सद्गुरु भगवंत न सिर्फ धर्मग्रंथों की रचना करके हम पर उपकार करते हैं, बल्कि पूर्वाचार्य महापुरुषों के द्वारा रचित सूत्रों का अर्थ बताते हुए प्रवचन देकर जीवन में धर्म की जागृति भी लाते हैं ।

तीर्थंकर, गणधर, पूर्वधर एवं पूर्वाचार्य के विरह में हमारी आत्मा को उनके वचनों का वचनामृत, सद्गुरु भगवंतों द्वारा प्रवचन के माध्यम से मिलता है । उस प्रवचन में आगम एवं प्रकरण ग्रंथों पर व्याख्या होने से उसे **व्याख्यान** भी कहते हैं और जिनेश्वर भगवान की आज्ञा के अनुसार धर्म का मार्ग बताने से उसे **जिनवाणी** भी कहते है ।

ज्ञान को प्रदान करने के माध्यम से गुरु भगवंत हमारी आत्मा में रहे अंधकार का नाश करते हैं अतः उनके द्वारा प्रदान किये जाने वाला प्रवचन हमें अवश्य श्रवण करना चाहिए । अपने जीवन के अन्य सारे कार्यों छोडकर भी विशेष रूप से आयोजित होने वाली धर्मसभा में अवश्य जुड़ना चाहिए ।

आधुनिक मानव

सिंह घास नहीं खाता है,
गाय मांस नहीं खाती है,
कबूतर रात्रि में नहीं खाता है,
परंतु आज का मानवी घास (अनाज),
मांस और रात्रि भोजन
सब कुछ करता है ।
पशु जीवन में मर्यादा है,
मनुष्य जीवन में नहीं,
फिर भी वह अपने आपको
बुद्धिशाली समझता है ।
क्या कहना उस मानव को ।

10 आहारसंज्ञा से मुक्ति हेतु तपधर्म की आराधना

आर.जी.स्ट्रीट-कोयंबत्तुर **दि. 18-06-2019**

आहार और जीवन का घनिष्ट सम्बन्ध है । शरीर को बनाने एवं शरीर के अस्तित्व को टिकाने के लिए और क्षुधा के निवारण के लिए हर प्राणी को आहार ग्रहण करने की आवश्यकता रहती है । जन्म के बाद हर प्राणी की सर्वप्रथम आवश्यकता आहार ग्रहण करने की होती है ।

जन्म-जन्मांतर से आत्मा में आहार ग्रहण करने के संस्कार इस प्रकार गाढ़ बने हुए हैं कि इस विषय में किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार के शिक्षण की आवश्यकता नहीं रहती है ।

जन्म प्राप्त कुत्ते के बच्चे की आँखे बन्द होने पर भी वह जन्म-जन्मांतरों के संस्कार वश, आसानी से स्तनपान कर लेता है, उसके लिए उसे किसी प्रकार के प्रशिक्षण की जरूरत नहीं है । पशुयोनि के सभी प्राणी पूरा दिन भोजन की शोध में लगे रहते हैं ।

मानव-देह के साथ भी आहार का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है । शरीर के अस्तित्व को टिकाए रखने के लिए, चारों गतियों में जीवात्मा को आहार लेना पड़ता है । वस्तुतः आत्मा का मूल स्वभाव तो अणाहारी है । आत्मा को आहार की जरूरत नहीं है, परंतु जब तक आत्मा संसार में कर्मों के बंधनों से बँधी हुई है, तब तक चारों गतियों में आत्मा शरीर को धारण करती है । कर्मों के बंधनों का क्षय होने पर शरीर का बंधन भी छूट जाता है । इसलिए जिन आत्माओं ने मोक्ष को प्राप्त कर लिया है, उन सिद्ध आत्माओं को कभी भी आहार लेना नहीं पड़ता है ।

अनादि काल से आत्मा के भीतर चार प्रकार के गाढ़ संस्कार रहे हुए हैं । आहार ग्रहण करना, असुरक्षा में भयभीत होना, विजातीय के

साथ संबंध करने रुप मैथुन संज्ञा और अपने धन के ममत्व और उसकी रक्षा के प्रबंध रूप परिग्रह संज्ञा ।

इन चारों विषयों में ममत्व होने के कारण हमारी आत्मा ने भूतकाल में अनंत जन्मों में खूब मार खायी है । इन चारों विषयों से जीवात्मा भयंकर पाप कर्मों से बँधती है ।

इनसे शाश्वत काल के लिए मुक्त होने के लिए वीतराग परमात्मा ने दान, शील, तप और भाव धर्म बताए हैं ।

धन की आसक्ति को तोड़ने के लिए एवं परिग्रह संज्ञा से मुक्त होने के लिए दान धर्म की आराधना करनी चाहिए । शक्ति अनुसार हर व्यक्ति को दान देना ही चाहिए ।

विजातीय व्यक्ति के प्रति रही विषय वासना रूप मैथुन संज्ञा से मुक्त होने के लिए शील धर्म की आराधना है । विषय वासना में डूबी आत्मा को आत्मकल्याण का विचार भी नहीं आता है ।

आहार की लत, आत्मा का अधोपतन कराती है । जो बार-बार भोजन करता है और अनावश्यक खाता रहता है, वह मरकर पशुयोनि में पैदा होता है । इस आहार संज्ञा से मुक्त होने के लिए तप धर्म की आराधना करनी चाहिए । शरीर को जिस ढाँचे में ढ़ाला जाए उसमें वो ढल जाता है । अतः प्रयत्नपूर्वक शरीर को तपस्या में जोडते हुए, भोजन से मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिए ।

भय से मुक्त होने के लिए मन शुभ भावनाओं से भावित करना चाहिए ।

दान, शील, तप और भाव धर्म की आराधना हमें प्रतिदिन करनी चाहिए ।

11

मन पानी जैसा है

आर.जी.स्ट्रीट-कोयंबत्तुर **दि. 19-06-2019**

मानव को प्राप्त मन, उसकी सबसे बड़ी शक्ति है । मन के कारण आत्मा का उत्थान भी हो सकता है और आत्मा का पतन भी ।

पूर्वाचार्यों ने मन को अनेक उपमाएँ दी हैं । हमारा मन पानी जैसा है । जैसे पानी का कोई रंग नहीं है, वैसे मन का भी कोई रंग नहीं है । पानी में जो रंग मिलाया जाय, उस रंग में पानी रंग जाता है, वैसे ही मन को भी जो निमित्त मिलते हैं, मन उन निमित्तों से जल्द ही भावित हो जाता है ।

पानी का कोई आकार नहीं है, जिस बर्तन में उसे भरा जाता है, उसी आकार में पानी स्थिर हो जाता है । वैसे ही मन जब सत्संग में रहता है तो शुभ भावों से भावित हो जाता है और कुसंग में रहे तो कुसंस्कारों में डूब जाता है ।

जलती हुई चिता को देखकर व्यक्ति के मन में संसार की असारता और अनित्यता के भाव आ जाते हैं, परंतु वह श्मशान का वैराग्य घर आने के बाद धुल जाता है ।

मन में सतत शुभ भावों में रखने के लिए मन को शुभ कार्यों में जोड़ना जरूरी है । इसलिए पूर्व के महापुरुषों ने हमारी आराधना में वृद्धि हो सके, इसलिए अनेक पर्वों और महापर्वों का नियोजन किया है ।

भारतीय संस्कृति में तारीख से भी तिथि का महत्व ज्यादा है । प्रत्येक दो दिनों के बाद तीसरे दिन धर्म आराधना के लिए पर्व तिथियाँ बताई हैं । दूज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी बड़े पर्व के दिन हैं ।

जो व्यक्ति प्रतिमास की इन पर्वतिथियों में भी आराधना न कर सके, उन जीवों के लिए हर महीने में पर्व बताए गए हैं ।

कई पर्व एक दिन के होते हैं-जैसे मौन एकादशी, ज्ञान पंचमी आदि । कई पर्व दो दिनों के भी होते हैं-जैसे दीपावली आदि । तो कई तीन दिन के जैसे-पौष दशमी । पर्युषण पर्व आठ दिन के और नवपद ओली नौ दिनों की होती है ।

आराधना में वृद्धि कराने के लिए आषाढ़ मास की चतुर्दशी से चातुर्मास का प्रारंभ होता है । तीर्थस्थानों में आराधना करने के लिए तो हमें घर छोड़कर जाना पड़ता है, जबकि ये पर्व दिन तो ऐसे पवित्र हैं, जो सामने से चलकर आते हैं ।

जो आत्मजागृति के संदेश को लेकर आने वाले इन पर्व दिनों की आराधना कर लेता है, वही अपने जीवन को सार्थक कर पाता है ।

दुनिया में पर्व तो बहुत हैं, परंतु दुनिया के पर्व तो मात्र ''खाओ, पीओ और मौज करो'' के ही संदेश को लाते हैं, जबकि धर्म के पर्व तो अनादि काल से मोह की गाढ़ निद्रा में सोई हुई चेतना को जगाने के लिए घंटनाद का काम करते हैं ।

बहुमान भाव

देव और गुरु के प्रति रहा
बहुमान भाव, हमारे मोक्ष को
नजदीक लाता है और
देव-गुरु के प्रति रहा अबहुमान
भाव हमारे मोक्ष को दूर धकेलता है ।
जीवन में देव-गुरु के प्रति रहे
बहुमान भाव में वृद्धि करते रहें
और उसका सीधा सरल उपाय है–
उनके उपकारों का पुनः पुनः स्मरण ।

12

इन्द्रियों के संयम से मोक्ष, असंयम से संसार

आर.जी.स्ट्रीट-कोयंबत्तुर **दि. 20-06-2019**

पाँच इन्द्रियों के विषय भोग और क्रोधादि चार कषाय आत्मा को दुर्गति में ले जाने वाले हैं। इन पर संयम रखने से जीवात्मा सभी कर्मों का क्षय कर मोक्ष में जा सकती है और यदि इन पर संयम नहीं है, तो पतन के सारे मार्ग खुल जाते हैं।

धर्म की आराधना करने के लिए पाँच इन्द्रियों की परिपूर्णता। खूब जरूरी है। यदि आँखें न हों तो प्रभु के दर्शन नहीं होंगे, जीवदया का पालन नहीं होगा, संयमजीवन की साधना भी नहीं हो सकेगी। यदि व्यक्ति कानों से बहरा हो तो परमात्मा के आगमों का वचनश्रवण नहीं हो सकेगा, तो पालन कैसे संभव होगा ?

यदि हाथ या पैर-विकलांग हैं, तो दान देना, तीर्थयात्रा आदि धर्मानुष्ठान का आचरण नहीं हो सकता है।

अतः इन इन्द्रियों को धर्ममार्ग में जोड़कर ही जीवात्मा कर्म से मुक्त करने वाली धर्म आराधना कर सकती हैं। परंतु यदि ये इन्द्रियाँ संयमित नहीं हैं तो अनेक पाप कर्मों का बंध हो सकता है।

पाप का प्रवेश आँखों से होता है। जहाँ आँखें जाती हैं, जिन दृश्यों को आँखें देखती हैं, उससे मन प्रभावित हुए बिना नहीं रहता है।

पाँच इन्द्रियों की पुष्टि भोजन से होती है। उपवास आदि के समय हमें कोई भी मौज-शोख के कार्य करना पसंद नहीं आता है, परंतु जब भरपेट भोजन के साथ स्वादिष्ट भोजन किया हो, तब मन अनेक पापकारी कार्यों में आसानी से जुड़ जाता है। खाया हुआ भोजन तो गले उतरने के बाद मूल्यहीन हो जाता है, पर उससे पैदा होनेवाले विचार हमारे मन में विकृति पैदा कर देते हैं।

अनादि काल से आत्मा पाँच इन्द्रियों के विषयभोग और कुसंस्कारों से लिप्त है, अतः इन्द्रिय के विषयभोग का त्याग कठिन लगता है ।

सूअर को अच्छा, स्वच्छ और स्वादिष्ट भोजन देने पर भी, उसे छोडकर वह गंदी गटर में ही सुख मानता है । उसे अच्छी वस्तु पसंद ही नहीं आती है, उसी प्रकार हमारे मन पर कुसंस्कारों का इतना अधिक प्रभाव है कि वह शाश्वत सुख को छोड़कर इन्द्रियों की गटर में ही जाना पसंद करता है ।

इन इन्द्रिय और मन पर काबू पाने के लिए तप-जप की साधना करनी चाहिए । तप के द्वारा आत्मा का शरीर से जुडा संबंध टूटता है, शरीर की ममता छूटती है और परमात्मा के नाम का जप करने से आत्मा का परमात्मा के साथ संबंध जुड़ता है ।

पश्चात्ताप

अज्ञानता के कारण
जीवन में पाप प्रवृत्ति हो जाय
तो भी दिल में तीव्र पश्चात्ताप
का भाव होना चाहिए ।
पश्चात्ताप के भाव में
पाप की सजा को कम करने
की अपूर्व शक्ति रही है ।
पाप करने के बाद जब
अनुमोदन का भाव जुड़ता है
तो उस पाप की सजा
खूब-खूब बढ़ जाती है ।

13

कर्मक्षय हेतु तप का आलंबन

आर.जी.स्ट्रीट-कोयंबत्तुर **दि. 21-06-2019**

किसी भी व्यक्ति के कार्य की सिद्धि होने के बाद पुरुषार्थ बंद जाता है । परंतु करुणानिधान परमात्मा श्री महावीर स्वामी ने हमारी आत्मा के कल्याण के लिए केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद प्रतिदिन दो-दो प्रहर तक धर्मदेशना प्रदान की है ।

दीक्षा जीवन स्वीकार करने के बाद भगवान महावीर स्वामी ने साढ़े बारह वर्षों तक जंगलों में रहकर घोरातिघोर कठोर साधना की थी । उन्होंने साढ़े बारह वर्षों में साढे ग्यारह वर्षों से अधिक निर्जल उपवास किये थे । मात्र 349 दिन पारणे के रुप में एकासने किये थे । कई बार तो एकासना भी मात्र एक ही द्रव्य से किया था ।

साढ़े बारह वर्षों की साधना में वे कभी बैठे या सोए नहीं थे । दिन और रात खड़े-खड़े कायोत्सर्ग और ध्यान की साधना की थी । पूर्व जन्मों में उपार्जित कर्मों से देव, मनुष्य और पशुओं के द्वारा किये गए सारे उपसर्गों को समता पूर्वक सहन किया था ।

इतनी कठोर साधना के फलस्वरूप उन्होंने अपने सारे कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त किया । केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद उनको अपने लिए कोई भी पुरुषार्थ करना बाकी नहीं रहा । फिर भी जगत् में रही भव्य आत्माओं के प्रतिबोध के लिए वे नगर-नगर में विहार कर प्रतिदिन दो प्रहर तक धर्म देशना देते थे ।

अपेक्षा से हमारी आत्मा ने खूब कष्ट सहन किये हैं । देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक गतियों में अनंती बार जन्म लेकर भयंकर कष्ट सहन किए है, परंतु उन कष्टों में समता के अभाव के कारण सिर्फ नवीन कर्मों का ही बंध किया है । उन कष्टों को समतापूर्वक सहन कर ले तो अपनी आत्मा का भी मोक्ष हो सकता है ।

14

समय सबके पास एक समान है ।

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 25-06-2019**

तीव्र गति से दौड़ते व्यक्ति के पैर में जब काँटा चुभ जाता है, तब उसकी गति स्खलित हो जाती है । पैर में काँटा लगने के बाद व्यक्ति का दौड़ना तो दूर रहा, चलना भी मुश्किल हो जाता है और जब काँटा निकल जाता है, तब पुनः गति में तेजी आ जाती है ।

धर्म के मार्ग में आगे बढ़ने के लिए, हमारी धर्म आराधना माया, निदान और मिथ्यात्व रूपी काँटों से रहित होनी चाहिए ।

आत्मा के भीतर जब तक माया का अस्तित्व रहा है, तब तक धर्माराधना में प्रगति नहीं हो सकती । माया हमारे आत्मविकास को रोक देती है । मायावी के मन में कुटिलता होती है, सरलता के अभाव में वह धर्म के कार्यों में भी दंभ करता है ।

धर्म के कार्य करने में उत्साह और रुचि नहीं होने से **''हमारे पास समय नहीं है''** ऐसा बहाना कर आए हुए धर्म के अवसर को व्यर्थ गवां देते हैं ।

कुदरत ने दुनिया के सभी लोगों को दिन भर के चौबीस घंटों की भेंट एक समान दी है । हमें अपना समय कैसे बिताना है ? इसका निर्णय हमें ही करना है ।

व्यापार में व्यस्त होने पर भी व्यक्ति भूख लगने पर भोजन आदि शरीर के आवश्यक कार्यों को करता ही है । उन कार्यों को दूसरे के भरोसे नहीं सौंपता है ।

परंतु धर्म के कार्य में समय की कमी का बहाना बनाते हैं । भूख लगने पर भोजन का कार्य धर्मपत्नी को नहीं सौंपते, स्वयं ही भोजन करते हैं, तो फिर धर्म का कार्य धर्मपत्नी को कैसे सौंप सकते हैं ?

शरीर के लिए भोजन आवश्यक है, वैसे आत्मा के लिए धर्म

आराधना आवश्यक है । धर्म की आराधना भी आत्मा के उत्कर्ष के लिए करनी चाहिए । किये हुए धर्म के बदले भौतिक सुखों की माँग कर सौदा नहीं करना चाहिए ।

भगवान के पास हमें धन, वैभव या सांसारिक सुखों की माँग करने के लिए नहीं जाना है, उनके पास तो अर्पण करने के लिए ही जाना है । यदि भगवान के पास कुछ माँगना हो तो जन्म, जरा और मरण रूप संसार से मुक्ति माँगनी चाहिए ।

आज लोगों को भगवान भी चमत्कारी चाहिए । जहाँ पर चमत्कार होता है, वहाँ मस्तक झुक जाता है । परंतु मात्र चमत्कार से आकर्षित होने जैसा नहीं है ।

वास्तव में प्रभु की निःस्वार्थ भाव से की गई पूजा के प्रभाव से परमात्मा की पूजा करने वाला स्वयं भी तीनों जगत् में पूज्य बन जाता है । परमात्मा को क्या और कितना अर्पण कर रहे हैं यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण है शुभ भाव ।

पूर्वजन्म में मात्र अठारह पुष्पों से प्रभु की पूजा के प्रभाव से कुमारपाल महाराजा ने 18 देशों के राज्य को प्राप्त किया, फिर भी उन्होंने अनासक्त भाव से ऐसी धर्मसाधना की है । कि 950 वर्ष बीतने के बाद भी उन्हें प्रतिदिन याद किया जाता है । अतः धर्म की आराधना निष्काम और निःस्वार्थ भाव से करनी चाहिए ।

महान् कौन ?

मान और अपमान को समान गिननेवाला ही महान् हो सकता है । सामान्य मानव तो मान-सम्मान को पाकर फुटबॉल की तरह फूल जाता है और अपमान को पाकर आग की ज्वाला की तरह भड़कने लग जाता है । दुनिया में मानव बहुत मिलेंगे, 'महान्' तो कोई विरला ही मिलेगा !

15 मोक्ष का परम साधनः सामायिक धर्म

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 26-06-2019**

प्रत्येक श्रावक के मन में संयमजीवन स्वरूप सर्वविरति की भावना होनी चाहिए और जब तक वह संयमजीवन का स्वीकार न कर ले, तब तक उसे बार-बार देशविरति स्वरूप सामायिक धर्म की आराधना करनी चाहिए ।

सामायिक धर्म की आराधना मोक्ष का परम अंग है । स्वयं तीर्थंकर भी अपने भरे-पूरे परिवार एवं राज्य संपत्ति का त्याग करके सर्व-विरति सामायिक स्वरूप दीक्षाजीवन का स्वीकार करते हैं । सामायिक के स्वीकार के साथ ही उन्हें मनःपर्यवज्ञान और साधना के फलस्वरूप केवलज्ञान प्राप्त होता है ।

कर्मों का क्षय करने की सर्वाधिक शक्ति समता भाव में है । तप से कर्मों का क्षय होता है, परंतु उसमें भी समता भाव आवश्यक है । यदि तप करते समय मन में रागद्वेष के द्वंद्वों में समताभाव न हो तो तप करने पर भी कर्मक्षय की जगह कर्मबंध हो सकता है ।

अनुकूलता और प्रतिकूलता, सुख और दुःख, शत्रु और मित्र, स्वर्ण और तृण, सन्मान और अपमान, हर्ष और शोक आदि द्वंद्वों में मध्यस्थ और तटस्थ रहना ही समता भाव है । ऐसी परम समता के भाव को प्राप्त करना अत्यंत कठिन है ।

हमारा मन अत्यंत ही चंचल है । प्रतिकूलता के समय में शांत रहना कठिन है, फिर भी प्रयत्न से साध्य है, परंतु अनुकूलता में राग नहीं करना, अत्यंत कठिन है ।

हमारे मन में क्रोध की आग पैदा होने में क्षण भर की भी देरी नहीं लगती है । चूल्हा, सिगड़ी, स्टोव और गैस को जलाने में थोड़ा भी समय लगता है परंतु मन में क्रोधादि कषायों के भडकने में थोड़ा भी

समय नहीं लगता है । मन की ऐसी स्थिति में अपने मन को शांत रखने एवं प्रेम, लगाव या राग के तथा क्रोध, द्वेष आदि से मुक्त होने के लिए श्रावक को बार-बार सामायिक करनी चाहिए ।

साधुजीवन में छह काय के जीवों को अभय दान है, परंतु श्रावक जीवन में कदम-कदम पर छह-काय के जीवों की हिंसा है । इससे विराम पाने हेतु सामायिक और पौषध की आराधना करनी चाहिए ।

सामायिक का जघन्य काल 48 मिनिट है । कम-से-कम प्रतिदिन एक बार सामायिक करने के द्वारा समताभाव का अभ्यास करना चाहिए । सामायिक से आत्मगुणों की पुष्टि होती है । अनादि काल से हमारी आत्मा में अहं और ममत्व भाव रहा हुआ है । इन कुसंस्कारों का नाश करने के लिए सामायिक की साधना अनिवार्य है ।

लाखों किलो सुवर्ण के दान से भी अधिक महिमा एक सामायिक की आराधना की है । सर्वोच्च भाव से सामायिक की आराधना की जाए, तो एक सामायिक में मोक्ष प्रदान करने की शक्ति रही हुई है । मध्यमभाव से की हुई सामायिक 92,59,25,925 पल्योपम वर्ष के देव आयुष्य का पुण्य प्रदान करती है ।

सिद्ध-भगवान

सिद्धों के केवलज्ञान में यदि श्रद्धा है
तो आप एकांत में भी पाप कैसे कर पाएंगे ?
आपके लिए एकांत है, परंतु अनंत सिद्ध भगवंत तो
आपके सभी पापों को प्रत्यक्ष देख ही रहे हैं तो फिर
उन सिद्धों की साक्षी में पाप करने की हिम्मत कैसे करें ?
जब हम यह सोचते हैं कि 'मेरे पाप को देखनेवाला
कोई नहीं है ।' सचमुच, उस समय
हम उन सिद्धों के अस्तित्व को भूल गए हैं
या उनकी श्रद्धा से विचलित हो गए हैं ।

16

जो झुकता है, वही पाता है

आर.एस.पुरम्, कोयंबत्तुर **दि. 27-06-2019**

जो झुकता है, वही पाता है ।

कुएँ में से पानी निकालने के लिए बाल्टी को झुकना पड़ता है, यदि सीधी बाल्टी डाली जाय, तो वह कभी भी भर नहीं सकती है ।

अथवा यदि बाल्टी को भरना है, तो उसे नीचे रखना पड़ता है । यदि वह नल के ऊपर रहे तो उसमें पानी कभी भी भरा नहीं जा सकता है ।

वैसे ही धर्म का ज्ञान प्राप्त करना हो तो परमात्मा और गुरुदेव के सामने नमन-वंदन करते हुए विनय अवश्य करना है । विनय के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है ।

परमात्मा और गुरुदेव के पास जाकर अपने दोनों घुटने, दोनों हाथ और मस्तक को जमीन पर स्पर्श करने के द्वारा विनय करना चाहिए । यदि विनयपूर्वक ज्ञान प्राप्त किया हो तो ही वह आत्मा को लाभदायी बन सकता है । जहाँ विनय नहीं होता वहाँ ज्ञान प्राप्त नहीं होता अथवा ज्ञान प्राप्त हो भी जाए, तो भी वह आत्मा को हितकर नहीं होता है ।

हमारे जीवन में जो कुछ भी अच्छा है, वह परमात्मा और गुरुदेव को ही आभारी है । यदि उनके द्वारा दिया गया धर्म का ज्ञान नहीं होता तो हमारे जीवन में कोई भी सुकृत नहीं हो सकता है । सुकृत के बिना हमें सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

दुनिया में दिये जाने वाले सारे आशीर्वाद अधूरे हैं । पुत्र-लाभ, धनलाभ, सौभाग्यलाभ, शतवर्ष आयुष्यलाभ आदि सभी की प्राप्ति होने पर भी जीवन में शांति का अभाव होता है ।

परंतु यदि जीवन में धर्मलाभ आ जाय, तो अन्य सभी लाभ स्वतः आ जाते हैं और लाभ होने पर भी उसमें आसक्ति का भाव नहीं रहता है ।

हमें गुरुदेव के पास धर्मलाभ लेने के लिए ही जाना है । उनके पास जाकर हमें दर्शन और ज्ञान पाना चाहिए ।

वर्तमान में देवदर्शन और प्रवचन का श्रवण T.V. के माध्यम से होने लगा है । T.V. के माध्यम से देवदर्शन और प्रवचनश्रवण में विनय, नम्रता और उनके प्रति सत्कार नहीं हो सकता है ।

मनुष्य जीवन का आयुष्य अति चंचल है, अतः जब तक जीवन में वृद्धावस्था न आए, जब तक इन्द्रियाँ शिथिल न हो जाए और जब तक शरीर में रोगों का हमला न हो जाए तब तक जीवन में धर्म की आराधना का आचरण कर लेना चाहिए ।

आज्ञा स्वीकार

प्रभु की आज्ञा के पालन से
प्रभु की आज्ञा का स्वीकार कठिन है ।
जिसने प्रभु की आज्ञा को स्वीकार
कर लिया, उसके लिए आज्ञा का पालन
सरल हो जाता है ।
आज्ञा-पालन का मूल तो
आज्ञा-स्वीकार ही है और
आज्ञा-स्वीकार का मूल
आज्ञा-बहुमान है । अतः
आज्ञापालन के पूर्व
आज्ञाबहुमान पर भार दें ।

17

तप धर्म से कठिन कर्मों का क्षय

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर दि. 28-06-2019

मानव जीवन में प्राप्त हुए ज्ञान पर मृत्यु, रोग और वृद्धावस्था से आवरण आ जाता है ।

मनुष्य ने चाहे कितना भी ज्ञान प्राप्त किया हो, मृत्यु के हमले के बाद सब कुछ भुला दिया जाता है । दुनिया का सारा ज्ञान प्राप्त करने के बाद जैसे ही जन्म बदलता है, उसे बाल मंदिर में ही पढ़ने के लिए बैठना पड़ता है ।

मृत्यु के साथ सब कुछ चला जाता है, रोग और वृद्धावस्था भी हमारे ज्ञान और बल आदि का नाश कर देते हैं ।

छोटा-सा भी रोग हमारे मन को विचलित कर देता है । मन की सारी स्थिरता नष्ट हो जाती है, ज्ञान आदि गुण का अस्तित्व टिक नहीं पाता है । वृद्धावस्था में शरीर शिथिल हो जाता है । अतः मृत्यु, रोग और वृद्धावस्था हमारा सर्वस्व हरण कर लेते हैं ।

परंतु आश्चर्य है कि तीर्थंकर भगवान के जीवन में, उनके ज्ञानादि गुणों पर मृत्यु, रोग और वृद्धावस्था का असर नहीं होता है ।

तीर्थंकर परमात्मा अपने पूर्व जन्म के देवलोक के भव में प्राप्त अवधिज्ञान को मनुष्यजन्म में साथ में लेकर आते हैं । उनके जीवन में रोग और वृद्धावस्था का असर नहीं होता है । जन्म से ही असंख्य देवता परमात्मा के जन्माभिषेक महोत्सव द्वारा उनकी भक्ति करते हैं ।

गृहस्थावस्था में उनके जीवन में मात्र पुण्य का ही उदय होता है । उनको किसी प्रकार की आधि, व्याधि या उपाधि नहीं होती है । उन्हें किसी राज्य आदि को प्राप्त करने के लिए युद्ध करना नहीं पड़ता है, सब कुछ स्वतः ही खींचा चला आता है । पूरे परिवार में सबसे ज्यादा मान-सम्मान को प्राप्त करते हैं । पानी माँगे तो दूध मिले ऐसा

पुण्य होने पर भी, वे सारी राज्य संपत्ति को छोड़कर संयम जीवन का स्वीकार करते हैं ।

सारी अनुकूलता और सुख-सामग्री का इच्छापूर्वक त्याग कर संयम स्वीकार करते है और आत्मा पर लगे कर्मों का क्षय करने के लिए तप धर्म का आचरण करते हैं ।

जब सर्वोच्च पुण्य के स्वामी, तीर्थंकर परमात्मा भी अपने कर्मों का क्षय करने के लिए तप धर्म का आचरण करते हैं, तो हमें भी हमारे कर्मों का क्षय करने के लिए तप धर्म का आश्रय लेना चाहिए ।

तप धर्म में आत्मा पर लगे कठिन कर्मों का क्षय करने की प्रचण्ड शक्ति है । परमात्मा के जीवन में आचरित तप धर्म का आचरण करना तो हमारे लिए शक्य नहीं है, फिर भी अपनी शक्ति के अनुसार प्राप्त हुई शक्ति को छिपाए बिना अवश्य ही तप धर्म की आराधना करनी चाहिए ।

कैसी मुर्खता ?

नील गगन में मुक्त उड्डयन
करने के स्वभाववाले पक्षी को पिंजरे में
बंद किया जाता है तो वह मुक्ति की ही
इच्छा करता है, उसको वह कैद
सुहाती नहीं है ।
परंतु आश्चर्य है कि पूर्ण स्वतंत्र
रहने के स्वभाववाली अपनी आत्मा
अनंत भवों से इस देह की कैद में
बंद है–लेकिन आज हमें उसका
अफसोस भी नहीं है ।
आत्मा की यह कैसी मूर्खता है ?

18

फुटबॉल की तरह आत्मा संसार में लातों की मार खाती है :

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 29-06-2019**

कष्टों को सहन करने से आत्मा पर लगे हुए कर्मों का क्षय होता है, परंतु किस भाव से कष्टों को सहन किया है ? वह महत्त्वपूर्ण है । स्वेच्छा से और प्रसन्नता से कष्टों को सहन करने पर अधिक प्रमाण में कर्मों का क्षय होता है और अनिच्छा से एवं रोते-रोते सहन करे तो अल्प प्रमाण में ही कर्मों का क्षय होता है ।

कोयले का व्यापारी भी व्यापार करता है और रत्न का व्यापारी भी करता है, परंतु कोयले के व्यापार में अल्प प्रमाण में मुनाफा होता है, जबकि रत्नों के व्यापार में अत्यधिक प्रमाण में मुनाफा होता है ।

वैसे ही इच्छापूर्वक सहन करने से अत्यधिक प्रमाण में कर्मनिर्जरा होती है ।

हमारी आत्मा ने भूतकाल में सहन तो खूब किया है ।

जैसे नदी के किनारे पर रहे बेडोल पत्थर, पानी के प्रवाह में बहते-बहते, अनेक बार टकराते-टकराते स्वतः गोल आकार पा लेते हैं । उसी प्रकार मनुष्य जन्म की प्राप्ति तक हमारी आत्मा ने भी तिर्यंच और नरक गतियों में अपार दुःखों को अनिच्छा से खूब सहन किया है ।

मनुष्य-जन्म प्राप्त करके जीवन में धर्म का प्रवेश होना जरुरी है ।

जैसे स्कूल का हर विद्यार्थी डॉक्टर, सी.ए. आदि पास नहीं कर सकता है, वैसे ही हर मनुष्य के मन में धर्म भावना पैदा नहीं होती है । संसार में रहते अनेक दुःखों को सहन करने पर भी धर्म भाव पैदा नहीं होता है ।

चार गति रूप संसार में जीवात्मा फुटबॉल की तरह है । फुटबॉल के मैदान में रहे 22 खिलाड़ी, फुटबॉल को कभी एक स्थान पर नहीं रहने देते हैं । जिसके पास भी वह फुटबॉल जाता है, वह खिलाड़ी उसे अपने पाँव से किक लगाता रहता है ।

वैसे ही कर्मराजा हमें विराट् विश्व में जन्म-मरण के चक्कर कराते हुए अपार दु:खों की भेंट देता है । दु:खों से मुक्त होने के लिए परमात्मा से प्रीति का संबंध जोड़ना चाहिए ।

संसार और संसार के साधनों से बंधा हुआ संबंध कायम नहीं रहता हैं, जबकि परमात्मा से बंधा हुआ संबंध शाश्वत है । नश्वर संसार से मुँह मोड़कर परमात्मा के प्रति अपनी विशेष प्रीति होनी चाहिए ।

समझदारी

अवसर हाथ में हो और समझ आ जाय
यह पुण्य की निशानी है ।
सामान्यतया इस दुनिया में
आदमी रोता है–वक्त निकल
जाने के बाद !
जब तक समय हाथ में होता है,
तब तक सत्य समझ में नहीं आता है
और वक्त निकल जाने के
बाद रोने के सिवाय कुछ हाथ लगता
नहीं है । कहना पड़ता है–
'अब पछताए होत क्या,
जब चिड़िया चुग गई खेत ।'

19

दु:खों का मुख्य कारण कर्म है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर दि. 30-06-2019

जीवत्व की अपेक्षा संसार में रही आत्माओं और मोक्ष में गई आत्माओं में कोई भेद नहीं है । फिर भी संसार में रही आत्माओं को चार गतियों में दु:ख सहन करने पड़ते है और मोक्ष में गई आत्माएँ अनंत सुख में लीन रहती हैं । इसका मुख्य कारण संसारी आत्माएँ कर्मों के बंधन से जकडी हुई हैं और मोक्ष में गई आत्मा कर्मों के बंधन से सर्वथा मुक्त है ।

समुद्र पानी से भरा होता है और वह पानी भी हर जगह खारा है वैसे ही यह सारा संसार दु:खों से भरा हुआ है ।

दु:खों का मुख्य कारण कर्म है । आत्मा में कर्म के प्रवेश के लिए मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग रूप पाँच द्वार हैं ।

जिनेश्वर परमात्मा के वचनों पर अश्रद्धा, मिथ्यात्व का मुख्य कारण है । मिथ्यात्व के अस्तित्व में दिया हुआ दान और किया हुआ तप भी आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति नहीं करा सकता है ।

इमारत की मजबूती उसकी मजबूत नींव के आधार पर है, वैसे ही तप-जप, चारित्र, ज्ञान आदि की शक्ति, समकित की नीव के आधार पर है ।

मिथ्यात्व के नाश और समकित की प्राप्ति के बाद जीवात्मा की हर प्रवृत्ति का तरीका बदल जाता है । उसे पापकर्म का आचरण करने में भय लगता है । पाप का भय होने से जहाँ भी पापकर्म का बंध होता होगा, वह उससे बचने का पूरा प्रयत्न करेगा ।

कार्य भले ही एक समान हो, परंतु उसे करने के तरीके में भेद होने से मिथ्यात्वी और समकिती के पापबंध में भेद होता है । पाप का आचरण करते हुए भी समकिती के मन में पाप का पक्षपात नहीं होने से एवं पाप के पश्चाताप का भाव होने से वह अल्प कर्मों का बंध करता है ।

आत्मा के भीतर समकित की ज्योति को प्रकट करने के लिए सर्वश्रेष्ठ आलंबन परमात्मा के वचनों के श्रवण रुप प्रवचन है । साक्षात् परमात्मा के वचन तो हमें प्राप्त नहीं हुए है, फिर भी उनके वचनों का अनुसरण करने वाले सद्गुरु के पास जाकर, विधि के पालन के साथ धर्म का श्रवण किया जाय, तो आत्मा के भीतर रहे अज्ञान का अंधकार दूर होकर, ज्ञान का प्रकाश प्रकट हो सकता है ।

जैसे तपे हुए लोहे के गोले पर नियमित रूप से पानी की बूंद गिरने से, तपा हुआ लोहे का गोला भी ठंडा हो जाता है, वैसे ही नियमित रूप से प्रवचन का श्रवण करने से आत्मा के भीतर ज्ञान का प्रकाश और समकित की प्राप्ति अवश्य हो सकती है ।

एक बार जीवन में समकित की प्राप्ति हो जाए तो अविरति, प्रमाद, कषाय और योग से आत्मा में आने वाले कर्मों के द्वार क्रमशः बंद होकर आत्मा सर्वकर्मों से मुक्त होकर परमात्मा के समान बन जायेगी ।

मन की पुकार

देवों को भी दुर्लभ ऐसे
मानव-जीवन को प्राप्तकर पापमुक्त
जीवन जीना, सर्व श्रेष्ठ है ।
यदि ऐसा जीवन शक्य न
हो तो पाप करते समय मन में
पाप का भय अवश्य रहना चाहिए ।
अंतर मन की यह पुकार होनी चाहिए
'यह पाप तो कर रहा हूँ, परंतु यह पाप,
करने जैसा नहीं है ।'

20 मुफ्त में कुछ भी नहीं मिलता है

राजगुरु अपार्टमेन्ट-कोयंबत्तुर **दि. 01-07-2019**

किसी व्यक्ति को प्रधानमंत्री पद मिलने के बाद यदि वह अपना पूरा कार्यकाल, मौज-शौक में बिता देता है, तो दूसरी बार जनता उसे पुनः प्रधानमंत्री का पद नहीं देती है । अपना पद वफादारी से निभाने पर ही वद पद पुनः प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं । मात्र पद ही नहीं जीवन जीने की हर सामग्री प्राप्त करने के पीछे, उसके योग्य कीमत चुकानी ही पड़ती है । कीमत चुकाए बिना मुफ्त में कुछ भी प्राप्त नहीं होता है ।

उसी प्रकार इस जन्म में प्राप्त मनुष्यजन्म, पूर्ण अंगोपांग, पंचेन्द्रिय की परिपूर्णता आदि सामग्री के पीछे हमने भी पुण्य की बड़ी कीमत चुकाई है । अन्यथा अनंत और असंख्य जीवों को जो प्राप्त नहीं हुआ ऐसा हमें प्राप्त हुआ है, वह नहीं होता और अब जो प्राप्त हुआ है, उसे सार्थक नहीं किया, तो पुनः मनुष्य जन्म आदि प्राप्त नहीं होंगे ।

सद्धर्म की आराधना से आत्मा का सर्वाधिक विकास मात्र मनुष्यजन्म में ही हो सकता है । देवों को भी दुर्लभ ऐसा मनुष्य जन्म पाने के लिए इस जन्म में पुण्य की कमाई कर लेनी चाहिए ।

पूरी जिंदगी धन की कमाई करने पर भी धन, पुनर्जन्म में साथ नहीं चलता है । साथ चलता है मात्र पुण्य और पाप । पुण्य का साथ है तो पूरी दुनिया दुश्मन हो जाय तो भी कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती और पुण्य के साथ छोड़ने पर अपना व्यक्ति ही हमारा हत्यारा बन जाता है ।

बड़े-बड़े सत्ताधीश और राजाओं के जीवन में ऐसी घटनाएँ प्रत्यक्ष देखने को मिलती हैं । जहाँ उनके अंगरक्षक या परिवारजनों में से ही किसी ने उन्हें धोखा दिया है ।

मनुष्य जन्म में देखने को आँखें मिलीं, सुनने की शक्ति मिली, चलने को पैर मिले और काम करने के लिए हाथ मिले, ये सब पुण्य के बिना नहीं मिले हैं । हजारों मनुष्य ऐसे हैं, जिन्हें देखने को आँख, सुनने को कान, बोलने को जबान, चलने को पैर आदि प्राप्त नहीं हुए हैं ।

पंचेन्द्रिय की परिपूर्णता आदि सामग्री पैसों से नहीं परंतु पुण्य से प्राप्त हुई है । सारी दुनिया पैसों को प्रधानता देती है, परंतु पैसों की प्राप्ति भी पुण्य के बिना नहीं होती है और पुण्य की प्राप्ति परमात्मा के बिना नहीं होती है ।

वीतराग और सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्मा ने जगत् के जीवों के उद्धार के लिए त्याग धर्म का मार्ग बताया है । यदि शक्ति और वैराग्य हो तो संपूर्ण निष्पाप साधुजीवन का स्वीकार और पालन करना चाहिए और यदि इतनी शक्ति न हो तो सद्गृहस्थ के योग्य श्रावक जीवन जीकर अल्प पापाचरण के साथ अपना जीवन निर्वाह करना चाहिए ।

धन की कमाई के लिए हर व्यक्ति सतर्क रहता है, उसके लिए किसी की प्रेरणा की आवश्यकता नहीं रहती है, परंतु पुण्य की कमाई स्वरूप धर्म की आराधना के लिए विशेष प्रेरणा एवं आलंबन की आवश्यकता रहती है । देव-गुरु और धर्म के आलंबन को पाकर मनुष्य जीवन को सार्थक करना चाहिए ।

दान

दान का संपूर्ण फल पाना हो तो
दान देने के पहले उत्साह होना चाहिए ।
दान देते समय सद्भाव होना चाहिए और दान देने के बाद
दिल में उसकी अनुमोदना होनी चाहिए ।
जो दान रोते–रोते और अनिच्छा से दिया जाता है,
देने के बाद मन में पश्चात्ताप का भाव रहता है,
उस दान का वास्तविक फल समाप्त हो जाता है ।

21

सबसे अधिक कीमती आत्मा है

श्रीवत्सा-राजगुरु-अपार्टमेन्ट-कोयंबत्तुर दि. 02-07-2019

विज्ञान के सारे संशोधनों के केन्द्र में शरीर है, जबकि वीतराग परमात्मा द्वारा बताये गये धर्म के केन्द्र में शरीर नहीं, बल्कि आत्मा है ।

शरीर और मन से भी आत्मा की शांति ज्यादा महत्त्वपूर्ण है । परंतु शरीर और मन के सुखों को पाने के लिए हम आत्मा को भूल जाते हैं ।

शरीर की स्वस्थता, इन्द्रियों के विषयभोग एवं मनोरंजन के सारे आवश्यक कार्य हम समय पर करते हैं परंतु आत्मा की शुद्धि के लिए आवश्यक कार्यों को हम भूल जाते है ।

शरीर से भी ज्यादा कीमती आत्मा है । एक वाहन में यात्री और ड्राइवर दोनों होते हैं । यात्री चाहे ज्यादा क्यों न हों और ड्राइवर मात्र एक ही होतो भी हम ड्राइवर की इच्छा पूर्ण करते हैं, क्योंकि उसके बिना वाहन अपने गंतव्य स्थान पर नहीं पहुँच सकता है ।

वैसे ही शरीर रुपी वाहन में आत्मा ड्राइवर के स्थान पर है और इन्द्रियाँ-मन आदि यात्री हैं । शरीर-इन्द्रियां, मन आदि सभी का अस्तित्व और महत्त्व आत्मा के कारण है । आत्मा के बिना शरीर, इन्द्रिय और मन का कोई अर्थ नहीं है । शरीर में से आत्मा निकल जाने पर शरीर भी मुर्दा कहलाता है । यह सत्य जानने हुए भी हम आत्मा के कल्याण करने में आगे बढाने वाले परमात्मा और सद्गुरु के वचनों को भूल जाते हैं और शरीर और शरीर के संबंधी को संभालने की मुर्खता करते रहते हैं ।

परमात्मा और सद्गुरु हमारी आत्मा के सच्चे संबंधी हैं । बाकी स्वजन आदि सभी स्वार्थ के संबंधी हैं ।

तीर्थंकर परमात्मा ने अपने केवलज्ञान द्वारा जगत् के आत्महित के लिए धर्म का मार्ग बताया है । उनके विरह में, उनके मार्ग का

अनुसरण करने वाले सद्गुरु हमें प्राप्त हुए हैं, जो हमें परमात्मा का मार्ग बताकर आत्मा को कर्म रोगों से मुक्त करते है ।

जैसे डायाबिटीज् के रोगी को स्वस्थता पाने के लिए इन्स्यूलीन के इन्जेक्शन साथ में रखने जरूरी होते हैं, वैसे ही आत्मा के रोगों से मुक्त होने के लिए परमात्मा के वचन रूप इन्जेक्शन साथ में रखना जरूरी है, जो हमें सद्गुरु के प्रवचन से प्राप्त होते है ।

परमात्मा और आत्मोद्धारक धर्म की पहिचान हमें सद्गुरु के माध्यम से ही होती है । उनके द्वारा प्राप्त धर्म के वचनों का अनुसरण करने से आत्मा का उद्धार हुए बिना नहीं रहता है ।

अनिच्छा से शक्कर खाने पर भी वह मिठास ही देती है, तो इच्छापूर्वक खाने से तो और मिठास का अनुभव होता है । वैसे ही अनिच्छा से परमात्मा के वचनों को सुनने के बाद उनका आचरण करने पर भी आत्महित होता है, तो इच्छा, जिज्ञासा एवं उत्साह से परमात्म वचनों का श्रवण करने से तो आत्महित अवश्य होता है ।

प्रवचन के माध्यम से हमें आत्मा के रोगों का ज्ञान भी होता है और उन आत्मिक रोगों से मुक्त होने का उपाय भी प्राप्त होता है, अतः आत्मिक शुद्धि को प्राप्त करने के लिए परमात्म-वचन का श्रवण नियमित रूप से होना चाहिए ।

क्रोध और क्षमा

क्षमाशील व्यक्ति इसलोक और परलोक, दोनों लोक में सुखी होता है । क्षमाशील व्यक्ति इस जीवन में सम्मान प्राप्त करता है और परलोक में सद्गति प्राप्ति करता है– जबकि क्रोधी व्यक्ति इस जीवन में भी दुःखी होता है और परलोक में भी दुर्गति के गर्त में डूबकर महादुःखी होता है ।

22

आत्मा के रोगों की चिंता करें

श्रीवत्सा-राजगुरु-अपार्टमेन्ट-कोयंबत्तुर **दि. 03-07-2019**

ड्राइवर गलत रास्ते पर चला गया हो तो पता लगते ही अपना वाहन मोड़कर पुनः सही रास्ते पर आने का प्रयत्न करता है ।

वैसे ही जब हमारे जीवन में स्वीकार किये हुए व्रत-नियमों में मोह, प्रमाद या अज्ञानता वश स्खलना हो जाती है, तब उन पापों से पीछे हटने के लिए सद्गुरु के सम्मुख आलोचना करनी चाहिए । जहाँ व्रत-नियमों की मर्यादा में अतिक्रमण हो जाए वहाँ उन पापों से पीछे हटने रूप प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिए ।

पाप मात्र काया से नहीं परंतु मन और वचन से भी होता है । और वह भी स्वयं करने से, किसी अन्य के पास पापाचरण कराने से या पाप करनेवाले को सही मानने से भी आत्मा को पापाचरण की सजा होती है ।

वर्तमान में न्यायालय तो व्यक्ति को मात्र काया के पाप यदि पकडे जाएँ और न्याय के अनुसार गुनाह साबित हो जाए तो ही उसे सजा दे सकती है । परंतु कर्म की न्यायालय तो मन-वचन और काया के पापों की करण-करावण और अनुमोदन की भी सजा देती है ।

दिन भर में न जाने कितने पाप वचन और काया से निरंतर होते रहते हैं और मन तो दिन-रात अनेक पाप कर्मों का बंध करता रहता है । कपड़े गंदे होने पर उनकी सफाई के लिए हम सारे प्रयत्न करते हैं, जबकि पापों के मैल से मैली आत्मा की सफाई का स्मरण भी नहीं करते हैं ।

परमात्मा और सद्गुरु हमारी आत्मा के रोगों का इलाज करने वाले चिकित्सक हैं, परंतु उनकी आज्ञा का अनुसरण करने के लिए व्यक्ति तैयार नहीं होता है और शरीर के रोगों के इलाज में चिकित्सक की कठिन-से-कठिन चिकित्सा के लिए भी तुरंत तैयार हो जाता है ।

शरीर के रोगों से मुक्त होने के लिए चिकित्सक की सलाह से व्यक्ति जल्दी उठकर 5-7 किलो मीटर वॉकिंग भी करता है, मनपसंद मिठाई आदि का त्याग भी करता है । घर में घी होने पर भी लूखा-सूखा भोजन लेता है, नमक-मिर्च से रहित स्वादहीन भोजन भी मजबूरी से लेता हैं । हम शरीर को सँभालने के लिए न जाने कितने काया के कष्ट सहन करते है । सब कुछ शरीर की स्वस्थता के लिए, परंतु आत्मा की स्वस्थता के लिए परमात्मा की आज्ञा का पालन नहीं करते हैं ।

जो व्यक्ति परमात्मा की आज्ञा का पालन और अनुसरण करता है, उसे चिकित्सक की आज्ञा का पालन करना नहीं पड़ता है । परमात्मा के निर्देशानुसार गृहस्थ जीवन में भी श्रावक के योग्य व्रत नियम स्वीकार कर ले, तो आत्मा की उन्नति तो होगी ही, साथ में शरीर भी स्वस्थ रहेगा । आत्मा यदि पाप कर्मों से मुक्त होगी तो शरीर स्वतः रोगों से मुक्त बनेगा ।

अतः आत्मा के रोगों से मुक्त होने के लिए परमात्मा एवं सद्गुरु की आज्ञा का अनुसरण कर, किये हुए पापाचरण से मुक्त होने के लिए उन पापों का प्रायश्चित्त करना चाहिए ।

भाव

तांबे का सिक्का, चांदी का सिक्का और सोने का सिक्का तीनों का वजन समान होने पर भी उनके मूल्यों में खूब अंतर है, उसी प्रकार अनेक व्यक्तियों के बाह्य धर्म अनुष्ठान एक समान होने पर भी भावों की तरतमता के अनुसार उसके फल में खूब अंतर पड सकता है ।

23

श्री जीरावला पार्श्वनाथ भगवान की महिमा

श्रीवत्सा-राजगुरु-अपार्टमेन्ट-कोयंबत्तुर **दि. 04-07-2019**

सभा के बीच में जब एक व्यक्ति बोलता है, तब कोई उसकी बात स्वीकार नहीं करता है, चाहे वो हितकारी भी क्यों न हो और एक व्यक्ति जब बोलता है, तब बिना किसी के विरोध, उसकी बात का स्वीकार हो जाता है। उसके पीछे मुख्य कारण **'आदेय नाम कर्म है।'** इस पुण्य कर्म के कारण व्यक्ति हर स्थान में सन्मान और प्रगति प्राप्त करता है।

इस अवसर्पिणी काल में श्री ऋषभदेव स्वामी से महावीर स्वामी तक 24 तीर्थंकर हुए। उनमें सर्वाधिक प्रभावशाली 23वें श्री पार्श्वनाथ भगवान हैं। उसके पीछे मुख्य कारण, पूर्वजन्म के देवलोक के भव में उनकी आत्मा ने बड़े उत्साहपूर्वक तीर्थंकरों के 500 कल्याणकों का महोत्सव किया था, जिसके फलस्वरूप आदेय नाम कर्म उपार्जन किया था। आज उनके निर्वाण के 2800 वर्ष से अधिक बीतने पर भी सर्वाधिक स्तोत्र, मंदिर, प्रतिमा और नामस्मरण श्री पार्श्वनाथ भगवान के हैं।

भारत के अनेक राज्यों में 108 पार्श्वनाथ भगवान के नाम से अनेकानेक तीर्थ हैं। तथा 1008 से अधिक नामों और विशेषणों से उनकी पूजा और भक्ति होती है।

उन मुख्य नामों में श्री जीरावला पार्श्वनाथ की महिमा कुछ और ही है। किसी भी जैन मंदिर की प्रतिष्ठा के समय, प्रभु के पीछे दीवाल पर सबसे पहले श्री जीरावला पार्श्वनाथ भगवान का मंत्र, केशर द्वारा अवश्य लिखा जाता है। उनके स्मरण के बिना कहीं भी प्रतिष्ठा नहीं होती है।

राजस्थान की अरावली पहाड़ियों की तलहटी में आबूरोड के पास में श्री जीरावला तीर्थ रहा हुआ है । वहाँ रही प्रतिमा, श्री पार्श्वनाथ भगवान के अस्तित्व काल में ही श्री चन्द्रयश राजा ने निर्माण करा कर प्रभु के प्रथम गणधर श्री शुभ स्वामी के हाथों से प्रतिष्ठा कराई थी । कालक्रम से देश में हुए अनेक आक्रमणों के समय प्रतिमा के रक्षण के लिए जमीन में छिपायी गयी ।

विक्रम संवत् 1191 में जंगल की भूमि में रही प्रतिमा पर वहाँ से जाने वाली गाय का दूध झरने लगा । रहस्य जानने के बाद वरमाणवासी धांधल शेठ ने दैविक संकेत द्वारा उस स्थान से प्रतिमा प्राप्त की एवं पास में रहे श्री जीरावला नगर में आचार्यश्री अजितदेवसूरिजी ने प्रतिष्ठा की । तब से वह प्रतिमाजी **जीरावला पार्श्वनाथ** के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

कुछ वर्षों बाद मुगल राजाओं द्वारा तीर्थ और प्रतिमा को शस्त्रों के प्रहार से खंडित किया गया । खंडित प्रतिमा लापसी की पेटी में रखी गयी, जो दैविक प्रभाव से स्वतः जुड़ गयी, उसे पुनः प्रतिष्ठित किया गया ।

श्री जीरावला पार्श्वनाथ भगवान का नाम-स्मरण, सेवा, पूजा और भक्ति हमारे जीवन के सारे विघ्नों का नाश करती है । आराधना का सूक्ष्मबल पाने के लिए जैन संघ के 84 गच्छों के आचार्यो ने `सूरिमंत्र' की साधना करके आराधना, प्रभावना और रक्षा का बल प्राप्त किया है । श्रद्धा और भक्ति पूर्वक परमात्मा के जाप से हमारी आधि, व्याधि और उपाधि शांत होती है एवं आत्मा के उत्कर्ष में सहायक बल प्राप्त होता है । उनकी शरण स्वीकार करने वाले को परमात्मा अपने समान परमात्म पद पर स्थापित करते हैं ।

24

धर्म में श्रद्धा की नींव जरूरी है

श्रीवत्सा-राजगुरु-अपार्टमेन्ट-कोयंबत्तुर दि. 05-07-2019

मात्र पैसा कमाना, गाडी-बंगला खरीदना, या ऊँचे से ऊँचे पद प्राप्त करने में मनुष्य-जन्म की सफलता नहीं है । मनुष्य जन्म की सफलता रत्नत्रयी रूप सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की यथाशक्ति आराधना में है ।

वृक्ष की स्थिरता उसकी मजबूत जड़ों के आधार पर है, बड़ी-बड़ी इमारतों की मजबूती, उनकी नींव के आधार पर है, वैसे ही धर्माराधना की मजबूती और दृढ़ता के लिए वीतराग परमात्मा, कंचन कामिनी के त्यागी सद्गुरु और उनके द्वारा बताये शुद्ध धर्म पर पूर्ण रूप से श्रद्धा करना है ।

जब तक वीतराग परमात्मा के त्रिकालाबाधित सत्य वचनों पर विश्वास नहीं होता है, तब तक किया गया शुभ कार्य भी आत्मा को कर्मों से मुक्ति नहीं दिला सकता है ।

हम अपने जीवन में अनेक बार अनजान व्यक्तियों पर भी विश्वास कर लेते हैं । रेल्वे-बस आदि वाहन में बैठते समय ड्राइवर की परीक्षा नहीं करते, मात्र विश्वास रखकर वाहन में बैठ जाते हैं और गंतव्य स्थान पर पहुँच जाते हैं । बाल काटनेवाले हज्जाम को अपना सिर सौंप देते हैं, इस विश्वास पर कि वह अपने बाल ही काटेगा, गला नहीं ।

ऐसे अनेकानेक प्रसंगों में न जाने कितने लोगों पर हम विश्वास करते हैं, परंतु वीतराग परमात्मा के आत्महितकारी सत्य वचनों पर विश्वास कर उनके वचनों का दृढ़तापूर्वक पालन नहीं करते हैं ।

वीतराग परमात्मा पर विश्वास तभी होगा जब हमें उनके वचनों का बोध होगा ! बाकी तो धर्म के नाम पर अनेक अधर्म की प्रवृत्तियाँ

देखी जाती हैं । जैसे हर पीला धातु सोना नहीं होता, हर चमकती वस्तु चांदी नहीं होती है, वैसे ही कहलाता हुआ हर धर्म, धर्म नहीं होता । हर कार्य में विवेक रखना खूब जरूरी है ।

विवेक प्राप्त करने के लिए हमें भगवान के वचनों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । स्कूल और कॉलेज में पढ़ाया जाने वाला ज्ञान तो मात्र धन और शरीर केन्द्रित है, आत्मकेन्द्रित नहीं है । आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति हमें धर्म का अभ्यास करने से ही होगी ।

विज्ञान ने समय बचाने के लिए अनेक यंत्र-साधन दिये हैं । भोजन बनाने, सफाई करने, कपड़े धोने आदि सारे कार्यों में यंत्र साधनों की मदद से खूब सुलभता हो गयी है । परंतु बचा हुआ सारा समय टी.वी. और मोबाइल के उपयोग में चला जाता है ।

परमात्मा के वचनों को जानकर, उन पर पूर्ण श्रद्धा कर व्रत-नियमों का पालन करना चाहिए । हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन-सेवन और धन-वैभव के संचय रूप परिग्रह का त्याग करना चाहिए । इन सारे पापों का संपूर्ण विराम साधुजीवन में है । साधुजीवन-पालन करने में असमर्थ श्रावक को भी इन पापों से बचने का यथाशक्य प्रयत्न करना चाहिए ।

हमारे साथ होने वाला गलत व्यवहार हमें पसंद नहीं है, तो हमारे समान अन्य जीवों के साथ गलत व्यवहार कर हम आनंद कैसे मना सकते हैं ? अतः आत्मा की सुरक्षा के लिए व्रत नियम की दीवार और सद्गुरु की छत्रछाया का आश्रय लेना चाहिए ।

प्रतिज्ञा

चोरी के भय से द्वार पर ताला लगाया जाता है ।
बस, इसी प्रकार पाप न करने पर भी
पाप कर्म से बचने के लिए पाप के त्याग की
प्रतिज्ञा जरुरी है ।
'पाप नहीं करें'– इतना ही पर्याप्त नहीं है ।

25

मानव-मन कभी तृप्त नहीं होता

श्रीवत्सा-राजगुरु-अपार्टमेन्ट-कोयंबत्तुर दि. 06-07-2019

पेट की भूख पाव सेर आटे से तृप्त हो जाती है, परंतु मन की भूख कभी तृप्त नहीं होती है ।

जैसे सागर नदियों से तृप्त नहीं होता, श्मशान कभी मुर्दों से तृप्त नहीं होता वैसे ही मानव का मन भी चाहे जितना धन प्राप्त करे, कभी तृप्त नहीं होता है ।

मानव की एक इच्छा पूरी होने पर दूसरी इच्छा पैदा हो जाती है । यह जिंदगी भर चलता रहता है । आत्मिक सुख और मन की शांति के लिए वीतराग परमात्मा ने इच्छाओं में सुख और शांति का अभाव बताया है । **सुख इच्छापूर्ति में नहीं बल्कि इच्छामुक्ति में है ।**

संपूर्ण इच्छामुक्ति और धन का त्याग करना सद्गृहस्थ के लिए शक्य नहीं है, इसलिए सात्त्विकता से जीवन जीया जा सके, इससे अतिरिक्त धनसंग्रह का त्याग कर इच्छाओं का परिमाण करना चाहिए ।

जीवन में धन परिमाण से अतिरिक्त हो जाता है, तब जीवन में धर्म का प्रवेश नहीं होता है, बल्कि अनेक पाप कार्यों में वृद्धि हो जाती है । जीवन-जरूरी साधनों से बढ़कर मौज-शौक के पापों की खूब वृद्धि होती है ।

धन के अभिमान में व्यक्ति पागल-सा बन जाता है, उसके विवेकचक्षु बंद हो जाते हैं । भक्ष्य-अभक्ष्य, पेय-अपेय के विवेक बिना व्यक्ति का मांसाहार और मदिरापान के पापों में जीवन बर्बाद हो जाता है, और घर-संसार उजड़ जाता है ।

जीवन जीने के लिए भोजन आवश्यक है, परंतु भोजन के लिए अन्य प्राणियों की हत्या जरूरी नहीं है । मांसाहार आदि अभक्ष्य भोजन में अबोल प्राणियों की कत्ल होती है । अन्य को दुःखी करके अपने जीवन में सुख की कामना करना-मुर्खता है ।

वर्तमान की भोजनशैली में पश्चिम के अंधानुकरण से रोगों की वृद्धि हुई है । जीभ का स्वाद क्षणिक है, परंतु उससे पाचन तंत्र पर खूब बुरा असर हो जाता है । पाचनतंत्र कमजोर होने पर शरीर कमजोर और अनेक रोगों का घर बन जाता है ।

प्रतिवर्ष विज्ञान के संशोधनों और डॉक्टरों की संख्या बढ़ने पर भी रोगों और रोगियों की संख्या में कमी नहीं आती है । उसका मुख्य कारण, भोजन के स्वाद में, भोजन के साथ अनेक जीवाणुओं का भक्षण हो रहा है ।

धर्म में बताए रात्रिभोजनत्याग, सात्त्विक भोजन का स्वीकार एवं अभक्ष्य के त्याग आदि नीति-नियमों का पालन आत्मा को ही नहीं बल्कि शरीर को भी स्वस्थ रखता है ।

धर्म की आराधना में आगे बढ़ने के लिए शरीर की स्वस्थता और मन की स्थिरता अति आवश्यक है । इनके अभाव में धर्मक्रिया करना मुश्किल हो जाता है । अतः धर्माराधना में आगे बढ़ने के लिए भी जीवन में धन का परिमाण करके भोजन आदि में अभक्ष्य-भक्षण का त्याग करना चाहिए ।

मन की तृप्ति

पेट की भूख बूंद समान है । वह पाव सेर आटे से समाप्त हो जाती है । इन्द्रियों की भूख सरोवर समान है, जो अनुकूल सामग्री मिलने पर संतुष्ट हो जाती है, परंतु मन की भूख तो असीम है । छह खंड का साम्राज्य मिल जाय तो भी मन तृप्त नहीं होता है । उसकी तृप्ति तो इच्छामुक्त होने से ही हो सकती है । अतः प्रभु से ``इच्छा मुक्त होने की प्रार्थना करें ।''

26

युवावस्था में गुरुमाँ का साथ जरुरी है

फतेह हॉल-आर.जी.स्ट्रीट-कोयंबत्तुर **दि. 07-07-2019**

2575 वर्ष पहले केवलज्ञान प्राप्त करके चरम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी ने देवताओं द्वारा विरचित समवसरण में साधु-साध्वी-श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध श्रीसंघ की स्थापना की थी । जगत् के समस्त जीवों को आत्महित का मार्ग बताने वाले तीर्थंकर भगवान, स्वयं उनके द्वारा स्थापित श्रीसंघ को प्रतिदिन धर्मदेशना के पहले नमस्कार करते हैं ।

अपने जीवन में चोरी, डकैती, दुराचार, व्यभिचार, हिंसा आदि अनेक पापाचरण करने वालों ने भी तीर्थंकर और तीर्थंकर के बताए धर्म की शरण स्वीकार करके अपनी आत्मा का कल्याण किया है ।

परमात्मा द्वारा बताए जैन धर्म के सिद्धांत हम तक पहुँचें, इसके लिए अनेक आचार्य, साधु, राजा, मंत्री आदि ने अपने प्राणों का बलिदान देकर भी धर्म के सिद्धांतों की रक्षा की है । इस धर्मसेवा के कार्यों की विरासत आज की युवा पीढ़ी को प्राप्त हुई है ।

जीवन की 3 अवस्थाओं में बचपन और वृद्धावस्था शक्तिहीन हैं, जबकि युवावस्था शक्तिशाली है । बचपन की सुरक्षा माँ के आधीन है, वृद्धावस्था की सुरक्षा परमात्मा के आधीन है तो युवावस्था की सुरक्षा गुरुमाँ के आधीन है ।

युवावस्था विद्युत् के समान है, जैसे विद्युत को जिस यंत्र के साथ जोड़ा जाता है, उसके अनुसार विद्युत् अपना कार्य करती है । पंखे के साथ जुड़कर हवा देती है । सिगड़ी, हीटर के साथ जुड़कर गर्मी देती है । वैसे ही युवावस्था की शक्ति जिस कार्य से जुड़ती है, उसके अनुसार जीवन का उत्थान और पतन निश्चित होता हैं ।

यदि युवावस्था को सद्गुरुमाँ के अधीन रहकर जिसने अपने जीवन को सुरक्षित किया है, उसका जीवन सुसंस्कारित बन जाता है । अतः अपने जीवन में सिरछत्र स्वरुप गुरु का आलंबन जरूरी है । उनके पास से ज्ञान का खजाना प्राप्त करके धर्म, राष्ट्र रक्षा और देश में संस्कारों की जागृति के लिए तन-मन-धन से जुड़ना चाहिए ।

प्रभु भक्ति

देह के सौंदर्य को बढ़ाने के लिए स्नान करे
तो पाप कर्म का बंध होता है और प्रभु की
पूजा के लिए देह स्नान करे तो
पुण्य का बंध होता है ।
प्रवृत्ति एक समान होने पर भी
आशय के भेद से
कर्मबंध में भेद पड़ता है ।
प्रवृत्ति कुछ भी हो, धर्म आराधना में
आशय की प्रधानता है ।
आराधना के साथ आशय शुद्धि का
लक्ष्य होना खूब जरुरी है ।

27 सभी के आत्मकल्याण की भावना सर्वश्रेष्ठ है

आर.जी. स्ट्रीट -कोयंबत्तुर **दि. 08-07-2019**

प्रत्येक मानव के मन में कोई न कोई इच्छा अवश्य होती है । जो इच्छा स्व-पर की आत्मा को हितकारी है, वह इच्छा भी प्रशंसनीय है और जो इच्छा स्व-पर की आत्मा के लिए अहितकारी है, वह इच्छा भी निंदनीय है ।

'मेरा दुःख दूर हो और मुझे सुख की प्राप्ति हो'–यह स्वार्थ भावना है और **'जीव मात्र के दुःख दूर हों और उन्हें परम सुख की प्राप्ति हो,'** यह परमार्थ की भावना है । परमार्थ की भावना में भी श्रेष्ठ भावना है–कि **'मैं अपनी धर्मसाधना के बल से ऐसी शक्ति प्राप्त करूँ कि जिससे मैं सभी जीवों का आत्मा कल्याण करूँ ।'**

ऐसी भावना मात्र तीर्थंकरों की आत्माओं को ही होती है । भगवान महावीर स्वामी की आत्मा ने नयसार के भव में समकित की प्राप्ति की थी । जंगल में फंसे साधु मुनिराज के समूह को आहार आदि का दान करके जंगल पार करने का मार्ग बताया । इसके प्रत्युपकार में साधु भगवंतों ने नयसार को भवभ्रमण रूपी वन को पार करने का मोक्षमार्ग बताया ।

आत्मसाधना में आगे बढ़ते भगवान महावीर स्वामी के कुल 27 भव हुए, जिसमें कर्मों की क्रूर कदर्थना के कारण अनेक उतार चढ़ाव आए । चारों गतियों में भ्रमण करते 22वें भव में आध्यात्मिक साधना में प्रगति हुई । और 25वें भव में नंदन ऋषि के रूप में संयमजीवन का स्वीकार करके 11,80,645 मासक्षमण तप के साथ सभी जीवों के आत्महित की परम भावना से भावित हुए । दीर्घ तप, शुभ भावना के साथ अरिहंत आदि बीसस्थानकों की आराधना से तीर्थंकर नाम कर्म रूपी सर्वोच्च पुण्य प्रकृति का बंध किया ।

छब्बीसवें भव में देवलोक में 20 सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति को निर्लेप भाव से पूर्ण कर अंतिम भव में ब्राह्मण कुण्ड के ऋषभदत्त की पत्नी देवानंदा की कुक्षी में पधारे ।

परमात्मा के इस च्यवन के साथ प्रभु की माता ने मध्य रात्रि के समय अर्धजागृत अवस्था में 14 महास्वप्न देखे । ये चौदह स्वप्न अन्य स्वप्नों से विशिष्ट एवं गूढ रहस्यों से भरे होते हैं । चार दाँत का ऐरावण हाथी, उज्ज्वल वृषभ, केशरीसिंह, श्रीदेवी, पुष्प की माला, चन्द्र, सूर्य, ध्वजा, पूर्ण कलश, पद्मसरोवर, रत्नाकर, देव विमान, रत्नराशि एवं निर्धूम अग्नि–ये चौदह स्वप्न महाफलदायी एवं मोक्ष की साधना के सूचक हैं ।

ऐसे उत्तम स्वप्न मात्र तीर्थंकरों की ही माताएँ देखती हैं । प्रभु के च्यवन समय 32 लाख देवविमानों का स्वामी शक्रेन्द्र अपने आसन कंपन से च्यवन को जानकर विनम्र भाव से प्रभु की दिशा में आगे बढ़कर शक्रस्तव के पाठ से परमात्मा की स्तवना करते हैं ।

परमात्मा के ये च्यवन आदि कल्याणक जगत् के सभी जीवों को आनंददायी होने से इन्हें कल्याणक कहते हैं । कल्याणक की आराधना से हमारी आत्मा का भी संसारभ्रमण सीमित होता है ।

धर्म के लिए सहन

धन रसिक आत्मा धन पाने के लिए
जितना सहन करती है,
उतना धर्म के लिए सहन करे तो
उस आत्मा का मोक्ष हुए बिना नहीं रहे ।
अनादि के कुसंस्कारों के कारण
आत्मा धन के लिए बहुत सहन करती है,
उतना धर्म के नाम पर सहन नहीं करती है ।

28

दुःख से भी सुख खतरनाक है

आर.जी.स्ट्रीट-कोयंबत्तुर **दि. 09-07-2019**

जीवन का हर दिन हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है । जो शुभ कार्य हमने अभी तक नहीं किया ऐसा शुभ कार्य हम इस नए दिन में कर सकते हैं । संसार की कोई भी चेष्टा हमारे लिए नयी नहीं है । अनादि काल से संसार-परिभ्रमण में दुनिया का हर सुख और हर दुःख हमारी आत्मा ने अनेक बार प्राप्त किया है । आत्मा के भीतर ज्ञानज्योति के अभाव में हमने सुख पाने पर भी अशुभ कर्मों का ही बंध किया है और दुःख पाने पर भी अशुभ कर्मों का ही बंध किया है ।

सुखप्राप्ति होने पर उस सुख के प्रति ममता-आसक्ति और राग भाव के कारण आत्मा पापकर्म का बंध करती है, तो दुःख आने पर दुःख के प्रति अरुचि, घृणा और द्वेष भाव के कारण आत्मा पाप कर्म का बंध करती है । देवादि भव में रागजन्य कर्म का बंध हुआ और नरकादि भव में द्वेषजन्य कर्म का बंध हुआ ।

जब तक आत्मा में समकित की प्राप्ति नहीं होती है तब तक आत्मा हर परिस्थिति में पापकर्म का ही बंध करती है और जब आत्मा के भीतर धर्म की ज्योति प्रकट होती है, तब हर परिस्थिति को देखने की दृष्टि बदल जाती है । सुख का राग और दुःख का द्वेष खत्म हो जाता है इसलिए समकिती आत्मा सुख और दुःख दोनों ही प्रसंगों में पाप कर्मों का क्षय ही करती है ।

हमे दुःख खराब लगता है और सुख प्रिय लगता है, जबकि वास्तव में दुःख से भी सुख ज्यादा खतरनाक है । दुःख के समय द्वेष से भी ज्यादा, सुख के समय राग होता है, जो ज्यादा पाप-कर्म का बंध कराता है ।

आत्मा और शरीर दोनों भिन्न हैं । परंतु हमें आत्मा और शरीर

एक ही लगते हैं । शरीर को ही हमने आत्मा मान लिया है और इसलिए शरीर के सुख-दुःख को हमने आत्मा के सुख-दुःख मान लिये हैं । सुख-दुःख दोनों ही डुबोने वाले हैं, जिसे वीतराग परमात्मा का धर्म प्राप्त हुआ है, वही बच सकता है ।

काल के प्रभाव से भोजन आदि के रस-कस आदि के साथ हर वस्तु में कमी आयी है । तो साथ ही धर्म के भावों में भी कमी आयी है । कलिकाल के साथ वीतराग परमात्मा, गणधर भगवान एवं विशिष्ट महाज्ञानी के अभाव में, प्रतिमा स्वरूप परमात्मा एवं उनके द्वारा स्थापित धर्मशासन हमें सद्गुरु के द्वारा प्राप्त हुआ है, यह हमारा बड़ा सौभाग्य है ।

जीवन में होनेवाले और नहीं होनेवाले पापों के त्याग स्वरूप पच्चक्खाण करके विरति धर्म की आराधना करनी चाहिए । यदि शक्ति हो तो सभी पापों के त्याग स्वरूप सर्वविरति की आराधना करनी चाहिए । यदि इतनी शक्ति न हो तो जितने हो सके उतने पापों का त्याग अवश्य करना चाहिए ।

गृहस्थ जीवन में सारे पापों का संपूर्णतया त्याग करना शक्य नहीं है, फिर भी विलासिता के पापों का त्याग तो अवश्य ही करना चाहिए ।

वैराग्य

**जिसका वैराग्य परिपक्व होगा,
वह कहीं भी जाएगा, उसे कोई
भयस्थान नहीं है, परंतु जिसका वैराग्य
कच्चा है, उसे तो कदम–कदम पर भय है ।
कोई भी अशुभ निमित्त उस आत्मा
का पतन करा सकता है ।
वैराग्य के दृढ़ीकरण के लिए सद्गुरु
का समागम, जिनवाणी का श्रवण, सत्साहित्य
का स्वाध्याय और अनित्य आदि भावनाओं
से आत्मा को भावित करना होगा ।**

29

चातुर्मास की महत्ता

आर.एस.पुरम-कोयंबत्तुर **दि. 10-07-2019**

पारसमणि के संग से लोहा भी सुवर्ण बन जाता है, वैसे ही सद्गुरु के संग से पामर और पापी व्यक्ति भी पावन बन जाता है । गुरु के द्वारा हमें परमात्मा और धर्म का परिचय होता है ।

वैसे तो वर्ष में तीन चातुर्मास होते हैं लेकिन उसमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण यह आषाढ़-चातुर्मास है । आषाढ-चातुर्मास में ही हमें सद्गुरु से ज्ञानधन पाने का सर्वश्रेष्ठ आलंबन मिलता है ।

पानी से प्यास शांत होती है, शरीर में ठंडक का अहसास होता है और शरीर के मैल की सफाई होती है ।

वैसे ही जिन-वाणी से आत्मा में रही कषायों की आग शांत होती है । आत्मिक आनंद का अहसास होता है और आत्मा पर लगे कर्मों के मैल की सफाई होती है ।

मानव-जीवन क्षणभंगुर है । कौनसा दिन अपने जीवन का अंतिम दिन होगा, यह पता नहीं है, इसलिए धन के पीछे दौड़ते हुए, प्राप्त धर्म के अवसर को व्यर्थ नहीं खोना चाहिए ।

चातुर्मास में जैसे पानी की वर्षा होती है वैसे ही जिनवाणी की वर्षा होती है । इस वर्षा के जल में भीग कर आत्मा में स्थायी परिवर्तन लाना चाहिए ।

परिवर्तन तो पानी का बर्फ के रूप में भी होता है, परंतु वह परिवर्तन कुछ समय का ही होता है, जबकि दूध में छाछ की थोड़ी भी बूँदे, दूध को दही बना देती है, जो आगे चलकर मक्खन और घी में बदल जाता है । हमारे जीवन में भी ऐसे ही चिर-स्थायी परिवर्तन करने के लिए चातुर्मास का यह अवसर आया है ।

30 आत्म जागृति के लिए है वर्षावास का चातुर्मास

आर.एस.पुरम-कोयंबत्तुर **दि. 11-07-2019**

मानवीय मन पर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का अत्याधिक प्रभाव होता है ।

आँखों के सामने जब परमात्मा, गुरुदेव या किसी सज्जन की मूर्ति या चित्र आता है, तब मन में उनके जीवन का अनुसरण करने का मन स्वतः हो जाता है और जब आँखों के सामने बीभत्स या हिंसा आदि के चित्र या दृश्य आते हैं, तब मन में पाप प्रवृत्तियों के कुसंस्कार उत्तेजित हो जाते हैं ।

जब मंदिर आदि धर्मस्थान, तीर्थस्थान, या किसी महामुनि के साधना-स्थल पर जाते हैं तब मन में सात्त्विकता एवं निर्मलता का स्पर्श होता है और जब हम सिनेमागृह, बगीचे या पर्यटनस्थल पर जाते हैं तब मन में मौज-शौक एवं विलासिता के विचार आते हैं ।

वैसे ही जब पर्व दिनों, वर्षावास-चातुर्मास, पर्युषण पर्व आदि विशिष्ट पर्वों में मन शुभ भावों से भावित बनता है, स्वतः ही त्याग, तपश्चर्या, व्रत-नियम स्वीकार करके पाप कार्यों की अल्पता के शुभ भाव पैदा हो जाते हैं ।

जब मन में एक शुभ भाव पैदा होता है, तब वह शुभ भाव, अनेक शुभ भावों को पैदा कराकर आत्मा को मुक्ति के पथ पर अग्रसर करा देता है और जब मन में एक दुर्भाव पैदा होता है, तब चाहे जितनी आत्म प्रगति की हो, सब कुछ ध्वस्त होकर पतन के गर्त में डूब जाता है ।

'मानव' शब्द में ही **'मान'** शब्द रहा है, जो मानव के अभिमान का सूचक है । मानव के लिए सत्ता, संपत्ति, स्वजन आदि का त्याग

आसान है, सबसे कठिन है अपने अभिमान का त्याग । अभिमान के कारण ही मानव के मन में क्रोध, माया और लोभ के भाव पैदा होते हैं ।

दुनिया में होनेवाले सारे युद्ध इन चार कषायों को ही आभारी हैं । चाहे दुनिया के बड़े युद्ध हो या पल-पल मन में पैदा होते सूक्ष्म युद्ध, वे भी क्रोधादि कषायों के कारण हैं ।

कषायों से मुक्त होने के लिए यह वर्षावास का चातुर्मास है । जिंदगी भर की आराधना तो साधु जीवन में है, परंतु जिसके पास साधु-जीवन योग्य, शक्ति और मनोबल न हो, उसे अधिकाधिक पापकार्यों के त्याग स्वरूप श्रावक-जीवन का पालन करना चाहिए ।

आत्मजागृति के लिए वर्षावास का चातुर्मास अत्यधिक महत्वपूर्ण है । जैसे व्यापार की सीजन में व्यक्ति थोड़ा भी आलस किये बिना व्यापार में जुड़ जाता है । वहाँ तो मात्र पैसे की कमाई होगी, जो मात्र एक भव में साथ देगी । जबकि आराधना की सीजन के समान चातुर्मास पर्व हमें जगाने के लिए दरवाजे पर आ खड़ा है । मात्र अल्प समय में ही चातुर्मास का प्रारंभ होगा । आये हुए इस अवसर को अधिक-से-अधिक धर्म-आराधना में जुड़कर सफल करना चाहिए ।

विश्वास

मोर के आगमन के साथ
चंदन वृक्ष पर लिपटे हुए सर्प भागने लगते हैं,
उसी प्रकार मन–मंदिर में प्रभु के
आगमन के साथ आत्मा पर लगे हुए
कर्म रुपी सर्प भागने लगते हैं ।
हमें मोर पर विश्वास है ।
प्रभु पर विश्वास है ?

31 वनस्पति के समान है मानवीय मन

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 12-07-2019**

वनस्पति के समान है मानवीय मन ! कुछ वनस्पतियाँ ऐसी होती हैं, जो पानी के संयोग से स्वतः पैदा हो जाती हैं, उसे किसी सिंचन की आवश्यकता नहीं है । कुछ वनस्पतियाँ ऐसी होती हैं, जिन्हें उगाने के लिए किसान को खेती में कडी मेहनत करनी पड़ती है । और किसान की मेहनत उसे बडे प्रमाण में अनाज का उत्पादन करके देती है । परंतु कुछ ऐसी भी वनस्पति होती है, जिसे चाहे कितना भी सींचा जाए, वह कभी उगती नहीं है ।

वैसे ही कुछ उत्तम आत्माएँ ऐसी होती हैं, जिन्हें किसी के भी उपदेश की आवश्यकता नहीं होती है । वे स्वतः ही अपनी इच्छा से धर्म के कार्यों में प्रयत्नशील बन जाती हैं । ऐसी उत्तम कक्षा में तीर्थंकर आदि महापुरुष होते हैं, जो स्वयं संबुद्ध होते हैं ।

कुछ आत्माएँ अधम कक्षा की होती हैं, जिन्हें चाहे कितना भी उपदेश दिया जाय, पर्वत की खेती के समान, वह निष्फल ही जाता है । ऐसी आत्माओं पर उपदेश का कोई असर नहीं होता है । अतः अधम आत्मा को लक्ष्य मे रखकर धर्मोपदेश नहीं दिया जाता है ।

उपदेश का दान मध्यम कक्षा के जीवों को लक्ष्य में रखकर दिया जाता है । उत्तम और अधम कक्षा के जीवों का परिमाण अति अल्प होता है । सामान्यतः जीव मध्यम कक्षा के होते हैं । उनको दिया हुआ हितोपदेश अवश्य ही फलप्रद बनता है ।

वर्षावास के चातुर्मास का अत्यधिक महत्त्व भी हितोपदेश के कारण ही है । जैन साधुओं का आचार है कि वे 8 महिने अन्य क्षेत्र में विचरण कर वर्षाकाल के चातुर्मास को एक स्थान पर ही व्यतीत करते हैं । सद्गुरुओं के सान्निध्य से उनके सदुपदेश-श्रवण का अवसर प्राप्त होता है ।

उपदेश के कारण ही इस चातुर्मास में, दान, शील, तप और भाव धर्म की आराधना अधिकाधिक मात्रा में होती है ।

यदि संसार के व्यापार का अल्प काल के लिए भी त्याग करके एकाग्र मन से धर्मोपदेश का श्रवण किया जाय, तो वह धर्मोपदेश आत्मा के लिए हितकारी बनकर आत्मोन्नति कराए बिना नहीं रहता है ।

जैसे शरीर के किसी भी भाग में दर्द हो परंतु मुँह से दवाई लेने पर दर्द से मुक्ति मिलती है । वैसे ही आत्मा के सभी रोगों का इलाज परमात्मा के वचनों के श्रवण से होता है ।

जैसे डॉक्टर द्वारा दी गई दवाई पर विश्वास रखकर सेवन करने से शरीर के रोग अवश्य शांत होते हैं । वैसे ही परमात्मा के वचनों पर पूर्ण विश्वास आ जाए, तो आत्मकल्याण हुए बिना नहीं रहेगा ।

सद्बुद्धि

धन के साथ यदि
सद्बुद्धि जुड़ी है तो वह धन
दान कराता है । धन के साथ यदि
दुर्बुद्धि जुड़ी हो तो वह धन
भोग कराता है ।
धन महत्त्व की वस्तु नहीं है, परंतु
धन के साथ जुड़ी बुद्धि
महत्त्व की है ।
दुर्बुद्धि पतन कराती है, जब कि
सद्बुद्धि उत्थान कराती है ।

32

देव और गुरु हैं सबसे बड़े उपकारी

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 13-07-2019**

प्यासे व्यक्ति को पानी पिलाने से उपकार होता है परन्तु प्यास का दुःख एक दो घंटों के बाद पुनः उपस्थित हो जाता है । समस्या उपस्थित रहने से यह उपकार भी अल्पकालीन है ।

भूखे व्यक्ति को भरपेट भोजन देने से भी उपकार होता है परन्तु भूख का दुःख, दिन बीतने पर पुनः उपस्थित हो जाता है । पुनः समस्या उपस्थित रहने से यह उपकार भी अल्पकालीन है ।

कपड़े रहित व्यक्ति को इच्छित वस्त्र देने से भी उपकार होता है, परन्तु वर्ष भर के उपयोग से वस्त्र फट जाता है, पुनः वस्त्र की माँग रहती है । अतः वस्त्र देने का उपकार भी अल्पकालीन है ।

मकान रहित व्यक्ति को मकान देने से भी उपकार होता है, पर वह मकान भी थोड़े वर्षों के बाद जीर्ण हो जाता है, समस्या पुनः उपस्थित हो जाती है, अतः वह उपकार भी अल्पकालीन है ।

दुनिया के ये सारे उपकार अल्पकालीन होने से ये सारे उपकारी छोटे हैं परन्तु सबसे बड़े उपकारी अरिहंत परमात्मा हैं, जो हमें ऐसा मार्ग बताते हैं कि सदाकाल के लिए समस्याएं समाप्त हो जाती हैं ।

केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद जगत् के स्वरूप को साक्षात् जानकर प्रतिदिन दो प्रहर तक धर्मदेशना के माध्यम से अरिहंत परमात्मा जगत् के जीवों को धर्मबोध देते हैं ।

जैसे बगीचे का माली विविध रंगों के पुष्पों को गूँथ कर माला बनाता है, वैसे ही गणधर भगवंत, उस धर्मदेशना को आगम सूत्र के रूप में गूँथते हैं ।

उन आगम सूत्रों के अर्थो को स्पष्ट करने के लिए अनेक महापुरुष आचार्य भगवन्तों ने टीकाएँ आदि अनेक साहित्य की रचना की है ।

जैसे गंगानदी का प्रवाह पहले खूब विस्तृत होता है, लेकिन आगे बहते-बहते वह प्रवाह छोटा होता जाता है । वैसे ही परमात्मा द्वारा प्रवाहित की गई श्रुतज्ञान की गंगा का प्रवाह भी, जैसे-जैसे काल बीतता गया, वैसे-वैसे क्षीण होती गयी ।

जैसे जैनेतर लोग गंगा नदी को पवित्र मानते हैं, तो गंगाजल के कलश को भी पवित्र मानते हैं । वैसे ही आज हमारे सद्भाग्य से जितना भी श्रुतज्ञान प्राप्त हुआ है, वह हमारे लिए उतना ही पवित्र है ।

परमात्मा का परिचय कराने वाली उनकी प्रतिमा हमारे लिए पूजनीय है तो उनके द्वारा बताए मार्ग को बताने वाले आगम ग्रंथ भी उतने ही पूजनीय हैं ।

मोह-माया से भरे इस विषम काल में आत्मा के उद्धार हेतु जिनेश्वर परमात्मा की प्रतिमा और आगम ग्रंथ ही आधारभूत हैं । उन आगम ग्रंथों पर प्रवचनों द्वारा विस्तार करने वाले सद्गुरु भी हमारे परम उपकारी हैं ।

आँख खुलते ही हमें जन्मदात्री माता व पिता के चरणों में नमन करना है तो जन्म-जन्मों के उपकारी देव-गुरु के दर्शन-वंदन करने के लिए मंदिर और उपाश्रय में जाना चाहिए ।

हित चिंता

सिर्फ स्व-सुख की चिंता आर्तध्यान है,
जब कि आत्म-हित की चिंता धर्मध्यान है ।
अपने सुख की चिंता में तो सारी दुनिया डूबी हुई है,
जब कि आत्म-हित की चिंता किसी विरल आत्मा में ही पैदा होती है । सच्चा संबंध भी वो ही कहलाता है,
जहाँ आत्महित की चिंता रही होती है ।

33

श्रावक जीवन की महत्ता

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 14-07-2019**

कमल कीचड़ में पैदा होता है और जल से बढ़ता है, फिर भी वह कमल, कीचड़ व जल से अलिप्त रहता है। बस, मुक्ति का ही जो तीव्र अभिलाषी है, ऐसा श्रावक संसार में पैदा होने पर भी अपने आपको संसार से अलिप्त रखता है।

श्रावक अर्थात् अविरति के पाप से डरने वाला। श्रावक अर्थात् विरक्ति में जीने के लिए प्रयत्नशील। वंदित्तु-सूत्र में कहा है–सम्यग्दृष्टि जीव संसार में पाप की क्रियाएँ करता है, फिर भी उसे अल्प पाप कर्म का बंध होता है, क्योंकि वह आसक्ति पूर्वक तीव्र भाव से पाप नहीं करता है।

जैसे क्षय (T.B.) का रोगी यही चाहता है कि मै इस रोग से सर्वथा मुक्त बन जाऊँ...और इसी उद्देश्य से वह डॉक्टर के द्वारा निर्दिष्ट छ-बारह महीने दवाई का कोर्स (Course) पूरा करता है। सर्वथा रोगमुक्ति की तीव्र इच्छा होने पर भी जैसे दवाई के द्वारा उसका रोग प्रतिदिन घटता जाता है। इसी प्रकार आत्मा को कर्मों का क्षयरोग T.B. लगा है। आत्मा का पूर्ण आरोग्य मोक्ष में है और उसे पाने के लिए विरति धर्म के पालन रुपी दवा (कोर्स Course) लेनी पड़ती है।

जितने अंश में हम विरति धर्म का पालन करते जाएंगे, उतने अंश में हम कर्म के रोग से मुक्त होते जाएंगे और इसके फलस्वरूप कर्मरोग से सर्वथा मुक्त हो सकेंगे।

विरति अर्थात् आस्त्रव द्वारों को बंद करना अर्थात् जिन प्रवृत्तियों से आत्मा कर्मबंध करती है, उन प्रवृत्तियों का त्याग करना। विरति धर्म के दो भेद हैं–सर्व विरति और देश विरति। सर्व विरति अर्थात् मन, वचन और काया से पापों का सर्वथा त्याग। देश विरति अर्थात् सभी पापों को त्याज्य (छोड़ने योग्य) मानते हुए भी आंशिक पापों का त्याग।

देव व नारक अविरति के पाप में डूबे हुए हैं ।

देशविरति की आराधना मनुष्य व तिर्यंच भी कर सकते हैं, जब कि सर्वविरति की आराधना एक मात्र मनुष्य ही कर सकता है ।

अनंतज्ञानी परमात्मा ने बताया है कि मानव-जीवन की सफलता रत्नत्रयी की संपूर्ण आराधना अर्थात् संयम जीवन के स्वीकार व पालन में ही है, परन्तु जो आत्माएं शारीरिक अशक्ति या आसक्ति के पाप के कारण संयम के स्वीकार व पालन में समर्थ नहीं हो, उसे कम से कम-श्रावक जीवन के अलंकार स्वरूप सम्यक्त्व सहित 12 व्रतों का स्वीकार अवश्य करना चाहिए । भावपूर्वक इन व्रतों का पालन करने से चारित्र मोहनीय के अंतराय टूटते हैं और आत्मा इसी भव में या आगामी भव में चारित्र-पालन के लिए समर्थ बनती है ।

गृहस्थ जीवन का त्याग करने वाले निर्ग्रंथ मुनि सर्वविरति धर्म का पालन करते हैं । सर्वविरति का अर्थ है सावद्य प्रवृत्ति का सर्वथा त्याग । अर्थात्–सर्व विरतिधर आत्मा मन, वचन और काया से न तो किसी भी प्रकार की सावद्य प्रवृत्ति स्वयं करती है, न ही दूसरे को करने की प्रेरणा करती है और न ही किसी के द्वार किये गये पापों की अनुमोदना करती है ।

प्रयत्न

भूतकाल को याद कर बार–बार रोने से क्या फायदा ? सच तो यह है कि जो वर्तमान हाथ में आया है, उसका सदुपयोग कर लें । भूतकाल 'भूत' हो चुका है, उसको भूल जाओ ! भविष्यकाल पैदा ही नहीं हुआ है तो उसकी निरर्थक चिंता मत करो ! बस, अपनी पूरी ताकत से जो वर्तमान अपने हाथों में है, उसे सुधारने के लिए प्रयत्न करो ।

34

आषाढ़ी चातुर्मास की महिमा

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 15-07-2019**

वर्ष दरम्यान तीन चातुर्मास आते हैं कार्तिक चातुर्मास, फाल्गुन चातुर्मास, असाढ़ी चातुर्मास । इम तीन चातुर्मास में असाढ़ी चातुर्मास का खूब-खूब महत्त्व है । असाढ़ सुदी-14 के दिन चातुर्मासिक प्रतिक्रमण किया जाता है । इस प्रतिक्रमण द्वारा चार मास में हुए पापों की शुद्धि की जाती है ।

वर्ष दरम्यान छह अट्ठाई आती है, उनमें से चार अट्ठाई का संबंध असाढ़ी चातुर्मास के साथ है । जैन शासन का सर्व श्रेष्ठ वार्षिक पर्व, पर्युषण महापर्व भी इसी चातुर्मास में आता है ।

भगवान महावीर के शासन में साधु-साध्वी के लिए नवकल्पी विहार का विधान है । असाढ़ी चातुर्मास सिवाय आठ मास में अन्य अन्य क्षेत्रों में विहार करने का होता है, जबकि चातुर्मास में चार महीने एक ही गाँव या नगर में रहने का होता है ।

भूतकाल में अनेक महात्माओ ने चातुर्मास दरम्यान चार-चार मास के उपवास किये थे । पूजा की ढाल में बोलते ही हैं ।

'चउमासी पारणुं आवे, जीरण सेठजी भावना भावे !' पूज्य आचार्य संभूतिविजयजी म. के तीन शिष्यों ने कुएँ की पाल पर, सिंहगुफा के पास तथा साँप के बिल के पास चातुर्मास किया था ।

चातुर्मास में अधिकांशतः वर्षाऋतु होती है, वर्षाऋतु में चारों और वातावरण में जीवोत्पत्ति खूब-खूब बढ़ जाती है । उन जीवों की रक्षा के लिए चातुर्मास दरम्यान विहार आदि का निषेध है । उन जीवों की रक्षा के लिए आहार-निहार की प्रवृत्ति भी कम की जाती है अर्थात् इन दिनो में अधिकांशतः तप धर्म की आराधना की जाती है ।

लगभग 2500 वर्ष बीतने के बाद आज भी भगवान महावीर के शासन में साधु-साध्वीजी भगवन्त चातुर्मास की उन मर्यादाओं का

पालन कर रहे हैं । आज भी चातुर्मास दरम्यान साधु-साध्वीजी एक ही गाँव अथवा नगर में वास करते हैं अर्थात् एक ही गाँव या नगर में स्थिरता करते हैं । चातुर्मास दरम्यान वस्त्र-पात्र आदि बहोरने का निषेध है ।

चातुर्मास दरम्यान साधु-साध्वीजी भगवन्तों को विशेष नियम पालन करने के होते हैं, उसी प्रकार श्रावक-श्राविकाओं के लिए भी इस चातुर्मास का खूब महत्त्व है । धर्मशास्त्रों में कहा हैं–**सभी जीवों की दया के लिए वर्षाऋतु में एक ही जगह रहना चाहिए ।** क्योंकि वर्षाऋतु में गमनागमन करने से अनेक त्रस जीवों की हिंसा हो जाती है, उन जीवों को बचाने के ध्येय से वर्षा ऋतु में गमनागमन नहीं करना चाहिए ।

श्री नेमिनाथ प्रभु के मुख से धर्मोपदेश सुनकर तीन खंड के अधिपति श्रीकृष्ण वासुदेव ने यह प्रतिज्ञा की थी कि वे चातुर्मास दरम्यान द्वारिकानगरी को छोड़कर अन्यत्र कहीं नही जाएंगे ।

18 देशों के अधिपति सम्राट् कुमारपाल महराजा को कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य से सद्धर्म की प्राप्ति हुई थी ।

राज्य-पालन की विशेष जवाबदारी को वहन करते हुए भी कुमारपाल महाराजा नियमित रुप से हेमचन्द्राचार्यजी भगवन्त के मुख से जिनवाणी का श्रवण करते थे ।

दोष भयंकर

रोगों से जो त्रस्त है, वह डॉक्टर से प्रेम करता है ।
दोषों से जो त्रस्त है, वह गुरु से प्रेम करता है ।
रोग से भी दोष ज्यादा भयंकर है ।
रोग तो एक ही जीवन को बर्बाद करेगा, जबकि दोष तो भवोभव तक आत्मा की खानाखराबी कर देंगे ।
अतः अपने शारीरिक रोगों से भी
आत्मा के दोषों की ज्यादा चिंता करें ।

35

चातुर्मास के कर्त्तव्य

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 16-07-2019**

शास्त्रों में चातुर्मास के नौ अलंकार बतलाए हैं-इन अलंकारों से अपने जीवन को विभूषित करना चाहिए ।

1. सामायिक : समत्व योग की प्राप्ति के लिए प्रतिदिन कम से कम एक सामायिक की साधना अवश्य करनी चाहिए । सावद्य योग के त्याग की प्रतिज्ञा पूर्वक एक ही स्थान पर 48 मिनिट के लिए बैठना चाहिए और नमस्कार महामंत्र के जाप अथवा शास्त्रीय स्वाध्याय में मन को जोड़कर समता-धर्म की आराधना, साधना करनी चाहिए ।

2. प्रतिक्रमण : जानबूझकर अथवा अनजान में हुए पापों से पीछे हटने की प्रक्रिया का नाम ही प्रतिक्रमण है । अतिचारों के सेवन से ग्रहण किये व्रत मलिन बनते हैं, उन अतिचारों की आलोचना प्रतिक्रमण द्वारा की जाती है । प्रतिदिन सुबह-शाम प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिए ।

3. पौषध : पौषध व्रत साधु जीवन के आस्वाद रूप है । पर्व दिनों में पौषध अवश्य करना चाहिए । पौषध तो आत्मा का औषध है, इससे आत्मशक्ति बढ़ती है । पौषध निवृत्ति प्रधान क्रिया है ।

4. परमात्म पूजन : प्रत्येक श्रावक-श्राविका को प्रतिदिन जिनेश्वर परमात्मा की स्वद्रव्य से अष्ट प्रकारी पूजा अवश्य करनी चाहिए । स्वद्रव्य से उत्तम सामग्री पूर्वक परमात्मा की भावपूर्वक भक्ति करने से चारित्र मोहनीय कर्म क्षीण हो जाता है, जिससे चारित्र उदय में आता है ।

5. स्नात्र पूजा : गीत-गान पूर्वक परमात्मा की स्नात्र पूजा अवश्य पढ़ानी चाहिए । प्रतिदिन शक्य न हो तो कभी-कभी पढ़ानी चाहिए । परमात्मा के जन्म समय इन्द्र महाराजा प्रभु को मेरु पर्वत पर ले जाकर जो स्नात्र महोत्सव करते हैं, उसी महोत्सव का वर्णन स्नात्र पूजा में आता है, अतः प्रभु के जन्म महोत्सव की स्मृति रूप स्नात्र पूजा खूब भावपूर्वक पढ़ानी चाहिए ।

6. विलेपन पूजा : प्रभु प्रतिमा पर उत्तम द्रव्यों का विलेपन करना चाहिए । बरास-चंदन आदि उत्तम द्रव्यों का विलेपन करते समय यह भावना करनी चाहिए कि **'हे प्रभो ! इस चंदन पूजा के फलस्वरुप मेरी आत्मा में रही कषायों की आग शांत हो जाय ।'**

7. ब्रह्मचर्य पालन : ब्रह्मचर्य का स्थूल अर्थ है-मैथुन का त्याग और सूक्ष्म अर्थ है-आत्मरमणता । आत्मरमणता पाने के लिए दैहिक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए । ब्रह्मचर्य के पालन से मन पवित्र बनता है, अशुभ विचार दूर हो जाते हैं ।

8. दान : अपनी शक्ति के अनुसार श्रावक को प्रतिदिन अवश्य दान करना चाहिए । अभय दान और सुपात्र दान को नहीं भूलना चाहिए । दीन-दु:खी, अनाथ व मूक प्राणी पर अनुकंपा करने से पुण्यानुबंधी पुण्य का बंध होता है ।

9. तपश्चर्या : कर्मों को खपाने के लिए तप एक अमोघ उपाय है । तीर्थंकर परमात्मा ने भी इस तप धर्म का आचरण किया है । चातुर्मास दरम्यान अपनी शक्ति अनुसार तप धर्म की विशेष आराधना करनी चाहिए ।

व्यसन

सात व्यसनों में से कोई भी व्यसन जीवन में लगा हो तो वह अन्य व्यसनों को खींचकर ले आता है । इसी प्रकार जीवन में एक सद्‌गुण का विकास किया हो तो वह अन्य सद्‌गुणों को खींचकर ले आता है । 'एक ही तो व्यसन है' इसमें क्या हो गया ? ऐसा मानकर एक भी व्यसन की उपेक्षा मत करना, अन्यथा आज जीवन में भले ही एक व्यसन है– कल यह जीवन व्यसनों से भरपूर हो जाएगा । सावधान रहें ! व्यसनों की उपेक्षा न करें ।

36

श्रावक के 36 कर्तव्य

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 17-07-2019**

आज से यहाँ चातुर्मास दरम्यान जिस ग्रंथ का वाचन प्रारम्भ हो रहा है, उस ग्रंथ का नाम है **'उपदेश-कल्पवल्ली'** । इसके रचयिता हैं तपागच्छ गगन नभोमणि **श्री सोमसुंदरसूरिजी म.** की पाट परम्परा में हुए महोपाध्याय **श्री धर्महंस गणी** के शिष्यरत्न वाचकवर्य श्री इन्द्रहंस गणिवर । मूल ग्रंथ का प्रसिद्ध नाम हैं **'मण्हजिणाणं की सज्झाय' ।**

जिस प्रकार साधु जीवन में सुबह-शाम सज्झाय के रुप में **'धम्मो मंगल-मुक्किट्ठं'** की पाँच गाथाएँ अर्थात् दशवैकालिक सूत्र का पहला अध्ययन बोला जाता है, उसी प्रकार श्रावकों को पौषध दरम्यान सुबह शाम पडिलेहन दरम्यान **'सज्झाय'** के रूप में **'मण्हजिणाणं'** की सज्झाय बोलने का विधान है ।

किसी अज्ञात महापुरुष ने सिर्फ पाँच गाथाओं के रुप में इस सज्झाय की रचना की है । सज्झाय की रचना प्राकृत भाषा में है । इन पाँच गाथाओं में श्रावक जीवन के 36 कर्तव्यों का नाम निर्देश किया गया है । इसी सज्झाय पर वि.सं. 1555 में पूज्य वाचकवर्य श्री इन्द्रहंस गणि म. ने 'उपदेश कल्पवल्ली ग्रंथ' की रचना की है ।

ग्रंथ के प्रारम्भ में टीकाकार महर्षि ने इस भरतक्षेत्र में पैदा हुए सर्वप्रथम तीर्थंकर आदिनाथ प्रभु का स्मरण किया है । भरतक्षेत्र के जीवों पर आदिनाथ प्रभु का सर्वाधिक उपकार है । 18 कोड़ा कोडी सागरोपम से जिस भरतक्षेत्र में धर्म का सर्वथा विरह था, वहाँ जैन शासन की स्थापना कर आदिनाथ प्रभु ने उस धर्म के विरह को दूर किया था । 24 तीर्थंकरों में सबसे अधिक केवली पर्याय भी आदिनाथ प्रभु का ही है ।

उसके बाद महावीर प्रभु के गौतम आदि गणधरों को याद किया, जिनके नामस्मरण में ही लक्ष्मी का वास रहा हुआ है ।

उसके बाद अपने परम उपकारी श्री धर्महंसगणि गुरुदेव को याद किया, जिनका अस्तित्व भव के ताप से संतप्त जीवों के लिए वृक्ष की छाया की भाँति अत्यंत ही शीतलता प्रदान करने वाला है ।

उसके बाद सम्यग्ज्ञान की अधिष्ठात्री माता सरस्वती देवी का स्मरण किया है ।

तारक तीर्थंकर परमात्मा, वाणी के माध्यम से ही जगत् के जीवों पर महान् उपकार करते हैं । जिस समय अरिहंत परमात्मा समवसरण में बैठकर जगत् के जीवों को धर्मोपदेश दे रहे थे, उस समय हमारी आत्मा कहाँ थी, हमें कुछ भी पता नहीं है । प्रभु की वाणी हमने सुनी या नहीं, पता नहीं ।

परन्तु अपने सद्भाग्य से तारक परमात्मा की उस वाणी को गणधर भगवन्तों ने सूत्र के रूप में गूंथा और उन्हीं आगम सूत्रों के आधार पर पूर्वाचार्य महर्षियों ने एक से एक बढ़कर प्रकरण ग्रंथों का निर्माण किया ।

हाँ, उन महापुरुषों ने वह अपना नवसर्जन संस्कृत और प्राकृत भाषा में किया, यदि आप लोग संस्कृत और प्राकृत भाषा को जानते तो उन ग्रंथों का रसास्वाद स्वयं भी कर सकते परन्तु काल के प्रभाव से वर्तमान जैन संघ का दुर्भाग्य है कि आज हम अपनी ही भाषा को भूल गए ।

वर्तमान जैन संघ में श्रावक-श्राविकाओं में से संस्कृत और प्राकृत भाषा के ज्ञाता कितने मिलेंगे ? आज हम अपनी ही भाषा को भूल गए हैं, परिणाम स्वरुप हमारे महापुरुषों ने कठोर श्रम लेकर हमारे उपकार के लिए जिस संस्कृत प्राकृत साहित्य का सर्जन किया, वह हमारे लिए भैंस के आगे भागवत की भाँति बेकार हो गया ।

37 जिनवाणी का श्रवण अवश्य करें

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 18-07-2019**

श्रावक को जिनवाणी का श्रवण अवश्य करना चाहिए । अपेक्षा से जिनपूजा से भी जिनवाणी का श्रवण महत्त्वपूर्ण है । परमात्मा की पूजा अवश्य करनी चाहिए, परन्तु जिनपूजा व जिनवाणी का प्रसंग एक साथ आ जाए तो प्रथम जिनवाणी का श्रवण करना चाहिए ।

वर्तमान काल में श्रावक जीवन में से स्वाध्याय तो लगभग समाप्त हो गया है, जबकि मोक्षमार्ग को जानने, समझने के लिए **'जिनवाणी'** ही सक्षम माध्यम है । जिनवाणी का नियमित श्रवण करने से जीवन में संवेग और वैराग्य भाव की अभिवृद्धि होती है ।

मोक्षमार्ग की आराधना-साधना में आगे बढ़ने के लिए देव और गुरु दोनों का आलंबन जरूरी है । रथ के लिए दोनों पहिए जरूरी हैं, उसी प्रकार मोक्षमार्ग में आगे बढ़ने के लिए देव और गुरु दोनों जरूरी हैं, देव अर्थात् भगवान की पूजा और गुरु से जिनवाणी का श्रवण ।

श्रद्धा और बहुमान के साथ नियमित रूप से जिनवाणी का श्रवण किया जाए तो बहुत कुछ लाभ हो सकता है ।

जिनवाणी के नियमित श्रवण के फलस्वरूप जन्म से जैन नहीं होने पर भी सम्राट् कुमारपाल बारह व्रतधारी श्रावक बन गए थे ।

पेपर दो प्रकार के आते हैं । Blotting Paper और Plastic Coated Paper । Blotting Paper (स्याही चूस कागज) पर स्याही की बूंदें गिरती हैं और वह पेपर उन्हे सोख लेता है–अपने अंदर उतार लेता है ।

Plastic Paper पर स्याही की बूंदें गिरती हैं, परन्तु वे वैसी ही रहती हैं–अन्दर जाती ही नहीं है ।

हमारे श्रोता भी दो प्रकार के होते हैं :– Plastic Coated Paper जैसे और Blotting Paper जैसे । हमारे अधिकांश श्रोता प्लास्टिक कोटेड पेपर जैसे होते हैं, जो धर्म का श्रवण तो करते हैं, परन्तु वह श्रवण उनके कानों को ही छूता है, हृदय को छूता ही नहीं है ।

कुमारपाल महाराजा Blotting Paper जैसे थे, कलिकाल सर्वज्ञ हेमचंद्राचार्यजी भगवन्त के मुख से ज्यों-ज्यों धर्मश्रवण करते गए, त्यों-त्यों हिंसा आदि पापों को तिलांजलि देते गए और उपादेय वस्तुओं को जीवन में उतारते गए ।

प्रयत्न

गृहस्थ अर्थार्जन के लिए अथक
प्रयत्न करता है,
अधिकाधिक पाने की इच्छा करता है
और प्राप्त
धन में सदैव असंतुष्ट होता है ।
श्रुतज्ञान साधु का सच्चा धन है ।
वह उसकी प्राप्ति के लिए
प्रयत्न करता है–
अधिक–से–अधिक पाने की
इच्छा करता है
और प्राप्त ज्ञान में सदैव
असंतुष्ट होता है ।
प्राप्त ज्ञान के संरक्षण हेतु
सदैव उद्यमशील रहता है ।

38

तीर्थंकर का पुण्य स्व-पर को हितकारी होता है

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 19-07-2019**

पुण्य का उदय आत्मा को फायदा ही करे ऐसा कोई निश्चित नहीं है। पुण्य का उदय भी पाप बंध का कारण बन सकता है ।

जैसे धन की प्राप्ति पुण्य के उदय से होती है, परंतु धन को प्राप्त कर यदि व्यक्ति शिकार, वेश्या गमन आदि पापकारी प्रवृत्ति में जुड़ा रहे तो धनप्राप्ति का पुण्य भी उसे अनेक नये पापकर्म के बंध में कारण बन जाता है ।

शारीरिक शक्ति एवं निरोगी काया की प्राप्ति पुण्य के उदय से होती है, परंतु शक्ति को पाकर भी यदि व्यक्ति हिंसा, कठोरता, निर्दयता एवं लोगों का शोषण ही करता रहे तो प्राप्त हुई शक्ति से वह पापकर्म का ही बंध करता है ।

सुंदर रूप, मधुर कंठ एवं आकर्षकता भी पुण्य से प्राप्त होती हैं परंतु वेश्या आदि को प्राप्त हुआ सुंदर रूप, मधुर कंठ एवं आकर्षकता लोगों के मन में भी पाप पैदा कराता हैं और वह स्वयं भी पापकारी प्रवृत्ति में जुड़ती है ।

अतः हर पुण्य कर्म स्व-पर को लाभ करे ऐसा निश्चित नहीं है, जबकि एक तीर्थंकर नाम कर्म का पुण्य, स्वयं को तो लाभ करता ही है, जगत् के सभी जीवों को आत्म कल्याण करने में सहायक बनता है ।

पूर्व के तीसरे भव में जगत् के सभी जीवों के आत्म-कल्याण की शुभ भावना के साथ विशिष्ट तप और संयम की आराधना के बल पर परमात्मा, तीर्थंकर नामकर्म का बंध करते हैं । तीर्थंकर नाम कर्म के उदय से उनके जीवन में अनेक विशेषताएं प्राप्त होती है ।

तीर्थंकर जब माता के गर्भ में आते हैं, तब माता को 14 महास्वप्नों का दर्शन होता है । जन्म के बाद करोड़ों देवता परमात्मा को मेरु पर्वत पर ले जाकर करोड़ों कलशों से जन्माभिषेक करते हैं । जन्म के समय माता और स्वयं को अल्प भी पीड़ा का अनुभव नहीं होता है । दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण के समय भी असंख्य देवता उनकी सेवा करते हैं ।

यह सब तो मात्र बाह्य प्रभाव हैं, भीतर का प्रभाव तो और भी विशिष्ट है । उनकी आत्मा में अल्प भी अज्ञान नहीं होता । केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद पूर्व जन्म की शुभ भावना एवं अपार करुणा से जगत् के जीवों का आत्मकल्याण करने के लिए प्रतिदिन दो प्रहर तक धर्मदेशना देते हैं ।

आज भी हमारे मन में पैदा होने वाले हर शुभ भाव का कारण परमात्मा की यह धर्मदेशना है । यदि परमात्मा की धर्मदेशना न होती तो जगत् में कोई भी शुभ कार्य नहीं होता ।

परमात्मा अपनी धर्मदेशना द्वारा आत्मा की अनंत शक्ति एवं समृद्धि का बोध देते हैं । जिसने भी आत्मा की अनंत शक्ति एवं समृद्धि का ज्ञान पाया है, उसे दुनिया की हर शक्ति और समृद्धि तुच्छ लगती है ।

विज्ञान चाहे कितने ही यंत्रों के माध्यम से संशोधन कर ले, आत्मा की शक्ति के सामने विज्ञान के संशोधन अतिन्यून हैं ।

जीवन-संदेश

अन्य जीवों के प्रति कोमल बनें ।
स्वयं के प्रति कठोर बनें ।
दूसरों के दुःखों की उपेक्षा न करें ।
दूसरों के पास से सुख की अपेक्षा न रखें ।
सहज पुण्य से जो मिला है,
उसमें प्रसन्न रहना सीखें ।
निरर्थक संकल्प-विकल्प कर
अपने मन को आकुल-व्याकुल न करें ।

39

विनयगुण के सर्वश्रेष्ठ आदर्श

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 20-07-2019**

मोमबत्ती चाहे कितनी भी बड़ी क्यों न हों, वह अंधकार को दूर नहीं करती है । परंतु जैसे ही उसका ज्योति के साथ संग होता है, वह अंधकार को दूर करते हुए प्रकाश फैलाने का काम करती है ।

वैसे ही जब जीवात्मा का परमात्मा या सद्गुरु के साथ संग होता है, तब अज्ञानी व्यक्ति भी उनके भाव से अपार ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं ।

गुरु कृपा में दुनिया की हर समृद्धि और शक्ति प्राप्त कराने की ताकत है । बस, आवश्यकता है मात्र पूर्ण समर्पण भाव की । यदि शिष्य के मन में गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण भाव है, तो अष्ट सिद्धि, नौ निधि, यावत् सिद्धिपद की प्राप्ति भी आसानी से हो जाती हैं ।

गुरु के प्रति सर्वाधिक विनयवान का परम आदर्श है प्रभु महावीर स्वामी के प्रथम शिष्य श्री गौतम स्वामीजी ।

जब तक उन्हें भगवान महावीर का संग नहीं हुआ था, तब तक वे अपने-आप को सर्वज्ञ मानते थे । भगवान महावीर स्वामी के पास भी वे अभिमानी बनकर प्रभु से वाद करके प्रभु को हराने के लिए आये थे ।

परंतु जब अपने मन में रही शंका का समाधान प्राप्त किया तब अपने आप को अल्पज्ञ माना और प्रभु को सर्वज्ञ मानकर अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया । जैसे बालक अपनी माता को समर्पित रहता है, वैसे वे भगवान महावीर स्वामी को समर्पित थे ।

अपने विनय और समर्पण भाव से गौतमस्वामी ने अपार ज्ञान एवं अनंत लब्धियाँ प्राप्त की थीं । फिर भी परमात्मा के धर्मवचनों को

उत्सुकता से एवं पूर्ण अहोभाव से श्रवण करते थे । अपने मन के सारे संदेह प्रभु को पूछ कर समाधान करते थे, अपनी मति का उपयोग नहीं करते थे ।

गुरुकृपा के बल से, वे जिसको भी दीक्षा देते थे, उसे अल्प काल में ही केवलज्ञान हो जाता था । जो केवलज्ञान स्वयं के पास नहीं था, उसका दान वे अपने आश्रितों को करते थे ।

'गौतम' नाम भी विशिष्ट शक्ति का दर्शन है । **'गौ'**-अर्थात् गाय, वे कामधेनु गाय से भी अधिक थे । **त** अर्थात् तरु-वे कल्पतरु से भी अधिक थे । एवं **म**-अर्थात् मणि-वे चिंतामणि से भी अधिक शक्तिशाली थे ।

कामधेनु गाय, कल्पतरु वृक्ष एवं चिंतामणि रत्न तो मात्र एक जन्म की इच्छाओं को पूर्ण करते हैं, जबकि गुरु गौतम स्वामी तो इनसे भी अधिक थे, जो इच्छा की पूर्ति नहीं बल्कि इच्छा की मुक्ति कराते थे ।

गुणों की पराकाष्ठा को प्राप्त गौतम स्वामीजी के जीवन से हमें विनय गुण की प्रेरणा लेनी चाहिए । विनय गुण के माध्यम से हमारे जीवन में भी गुरु गौतम स्वामी की तरह आत्मिक सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं ।

भूख

अपनी प्रशंसा के सो शब्द सुनते हुए भी
थकावट नहीं लगती है, परंतु अपनी निंदा का
एक शब्द भी सुनाई दे तो
मन आकुल-व्याकुल हो जाता है ।
मानव में प्रशंसा की भूख ज्यादा है
वह चाहे जितनी मिले, उसे आराम से पचा लेता है,
जब कि अपनी निंदा के दो कटु शब्द भी
उसके लिए पचाना बहुत मुश्किल है ।

40

समाधिमरण जरूरी है

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 21-07-2019**

जगत् में जिसका जन्म है, उसका मरण अवश्यंभावी है । जन्म का स्थान और समय हर कोई बता सकता है, परंतु अपने मरण का स्थान और समय कोई भी नहीं बता सकता है । मरण से न तो कोई बचा है, न ही बच सकता है ।

मरण हमारे संपूर्ण स्वामित्व का अंत कर देता है । जीवन में सौ की प्राप्ति वाले को हजार की इच्छा, हजार की प्राप्ति वाले को दस हजार, लाख, करोड़, दस करोड पाने वाले की इच्छा रहती है । परंतु मृत्यु एक क्षण इन सारे प्रयत्नों पर पानी फेर देती है । प्राप्त किया सारा स्वामित्व वारिस के नाम पर हो जाता है । आत्मा अपने पुण्य और पाप को लेकर अनंत की यात्रा के लिए चली जाती है ।

पाँव में लगे काँटे को निकालने के लिए काँटा चाहिए, जहर को दूर करने के लिए जहर चाहिए वैसे मरण का अंत करने हेतु मरण चाहिए । सामान्य मरण से मरण का अंत नहीं होता, मरण का अंत करने के लिए समाधिमरण की जरुरत है ।

मरण को महोत्सव बनाने के लिए जीवन को महोत्सव बनाना पड़ेगा । ढोल नगाड़े-शहनाई-फूलमाला से जीवन महोत्सव नहीं बनेगा, जीवन को महोत्सव बनाने के लिए दीनता का त्याग करना पड़ेगा ।

हमारी मनोवृत्ति ऐसी है कि थोड़ा सा भी सुख आ जाय तो सुख में लीन बन जाते हैं और थोड़ा सा भी दुःख आ जाय तो दुःखी (दीन) बन जाते हैं ।

सुख-दुःख में समता भाव रखना ही समाधि भाव है । मरण समय जब देह से आत्मा का वियोग होगा, तब शरीर में पीड़ा कम नहीं

होगी, परंतु यदि चित्त में परमात्मा का ध्यान होगा, तो मन एकाग्र और समाधि भाव प्राप्त कर सकेगा ।

यदि आत्मा को समाधि मृत्यु प्राप्त हो जाय, तो अल्प भव में ही मृत्यु की मुक्ति स्वरूप सिद्धगति की प्राप्ति हो सकती है ।

पूरा संसार मृत्यु के अधीन है, मात्र सिद्ध गति को प्राप्त हुई सिद्ध आत्माओं को कभी मरना नहीं पड़ता है ।

जो जन्मा है उसका मरण अवश्य होता है, परंतु मोक्ष में गई आत्मा का जन्म ही नहीं है तो मृत्यु का प्रश्न नहीं होता है ।

एकाग्रता

प्रभु की स्तुति रचना में शोभन
मुनि की तन्मयता कैसी ?
किसी ने उनके पात्र में पत्थर रख दिया
तो भी उन्हें पता नहीं चला ।
स्वाध्याय आदि में हमारी
एकाग्रता कितनी ?
थोड़ी भी आवाज होती है और अपना
मन उस ओर चला जाता है ।
साधना मार्ग में आगे बढ़ने के लिए
मन की एकाग्रता खूब जरुरी है ।
मन की एकाग्रता बिना की गई साधना
आत्मा के लिए हितकारी नहीं होती है ।

41 परमात्मा ही आत्मा के सच्चे संबंधी है

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 22-07-2019**

जन्म से मरण तक व्यक्ति जिंदगी भर नए-नए संबंधों को बाँधने का काम करता है । वह व्यक्ति बड़ा माना जाता है, जिसके सगे संबंधी या अनुयायी ज्यादा होते हैं । परंतु संसार के ये सारे संबंध मात्र एक जन्म के हैं । अगले जन्म में इस जन्म का कोई भी संबंधी या अनुयायी साथ नहीं चलता है ।

आत्मा के सच्चे संबंधी वे ही हो सकते हैं, जो जन्म-जन्मों तक साथ दे । जन्मो-जन्म तक साथ देने की शक्ति मात्र परमात्मा में ही है । परमात्मा में शक्ति है कि जो उनकी शरण स्वीकार करता है, परमात्मा उसे अपने समान बना देते हैं ।

परमात्मा की शरण स्वीकार करना अर्थात् परमात्मा की आज्ञा को स्वीकार करना । जैसे सच्चा बेटा वो ही माना जाता है, जो न मात्र माता-पिता की सेवा करता है । बल्कि उनकी आज्ञा का पालन भी करता है ।

वैसे ही परमात्मा के साथ उसी का संबंध जुड़ सकता है, जो परमात्मा की पूजा-भक्ति के साथ उनकी आज्ञा का पालन करता है । यदि जीवन में परमात्मा की आज्ञा का पालन या आज्ञा के प्रति सम्मान नहीं है तो परमात्मा की पूजा-भक्ति भी जीवन में प्रगति नहीं करा सकती ।

परमात्मा का हम पर सबसे बड़ा उपकार है कि उन्होंने अपने ज्ञान के बल से आत्म उद्धार का सच्चा मार्ग बताया है । उस मार्ग का ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है ।

आज विज्ञान का संशोधन और दुनिया की जानकारी का ज्ञान तो खूब बढ़ा है, परंतु वास्तव में वह ज्ञान नहीं मात्र अज्ञान ही है ।

जिनेश्वर भगवंतों की आज्ञा का पालन ही मोक्ष का कारण है, और जिनेश्वर भगवंत की आज्ञा का भंग ही संसार वृद्धि का कारण है ।

जिन-जिन आत्माओं ने स्वार्थ के वशीभूत होकर अज्ञानता व मोह के जाल में फँसकर परमात्मा की आज्ञा की उपेक्षा की अथवा उनसे विपरीत वर्तन किया, उन आत्माओं का घोर पतन हुआ है । अनंत काल से आत्मा के परिभ्रमण का मुख्य कारण परमात्मा की आज्ञा से विपरीत वर्तन ही है ।

जब तक वस्तु की सच्ची पहिचान नहीं हो पाती है, तब तक उस वस्तु के प्रति दिल में पूर्ण सद्‌भाव पैदा नहीं हो सकता है । परमात्मा की आज्ञा के प्रति सद्‌भाव पैदा करने के लिए उसका ज्ञान खूब आवश्यक है ।

तप की महिमा

काया को वश में करने के लिए
आयंबिल-अनशन आदि बाह्य तप हैं तो
मन को वश में करने के लिए
स्वाध्याय आदि अभ्यंतर तप है ।
बाह्य और अभ्यंतर दोनों में से
किसी की भी उपेक्षा करने
जैसी नहीं है ।
बाह्य तप की उपेक्षा से जीवन में
प्रमाद बढ़ जाता है तो
अभ्यंतर तप की उपेक्षा से हम
अपना लक्ष्य हार जाते हैं ।

42

आत्मा का सुख अनंत है

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 23-07-2019**

सभी लोगों की यह भ्रमणा है कि इन्द्रिय और शरीर के माध्यम से सुख और दुःख का अनुभव होता है । वास्तव में सुख आत्मा का धर्म है ।

हमारी मान्यता है कि इन्द्रियों के अनुकूल विषय से हमें सुख मिलता है और इन्द्रियों के प्रतिकूल विषय से हमें दुःख मिलता है ।

आँखों के समाने सुंदर रूप आता है, तब हमें सुख लगता है और कोई कुरूप कोढ़ी व्यक्ति आँखों के सामने आ जाए तो उसे हम देखना भी नहीं चाहते हैं, क्योंकि उसे हम दुःख मानते हैं ।

मनोहर संगीत, एवं वाद्ययंत्र की दिव्य आवाज हमारे कानों को पसंद पडती है परंतु उसी बीच कौए की कर्कश आवाज सुनने को भी मन नहीं चाहता ।

बगीचे में खिले अनेक पुष्पों की सुगंध हमारा मन हर लेती है । और गटर की दुर्गंध से हम हमारा नाक सिकोड़ने लगते हैं ।

रेशमी और मखमली स्पर्श से मन आह्लादित हो जाता है और कठोर कर्कश स्पर्श हमें पसंद नहीं आता है ।

मीठे-मधुर भोजन जीभ को पसंद आते हैं और कड़वे, तीखे पदार्थ हमें अरुचि पैदा कराते हैं ।

सुंदर स्पर्श, रूप, रस, गंध और शब्द तो मात्र इन्द्रिय के ही विषय हैं । इनके सुख में खूब अल्पता है । आत्मा का सुख अनंत है ।

संसार में रही जीवात्मा को मात्र भौतिक सुख का ही अनुभव होता है । आत्मिक सुख का अनुभव मात्र मोक्ष में ही होता है । भौतिक सुखों का अनुभव मात्र शरीर और इन्द्रिय के माध्यम से हो सकता है, आत्मिक सुख का अनुभव नहीं हो सकता है ।

भौतिक सुख का कहीं-न-कहीं अवश्य ही अंत आता है, क्योंकि संसार में एक गति में स्थिरता मात्र अल्प काल के लिए ही होती है ।

चाहे लाखों करोड़ो वर्षों का आयुष्य हो, वह एक दिन अवश्य पूर्ण हो जाता है । मोक्ष में आत्मा चिरकाल स्थायी होती है, इसलिए उसके सुख और स्थिति में कभी कोई कमी नहीं आ सकती है ।

मोक्ष में गई आत्मा का सुख सीमातीत है । किसी भी उपमा के माध्यम से मोक्ष के सुख का वर्णन नहीं हो सकता है ।

अरिहंत की आज्ञा, मोह के विषय को उतारने के लिए परममंत्र है । अरिहंत की आज्ञा, क्रोध-द्वेष की आग को शांत करने के लिए शीतल जल समान है ।

अरिहंत की आज्ञा कर्म रूपी व्याधि की चिकित्सा करने के लिए सर्वश्रेष्ठ चिकित्साशास्त्र । अरिहंत की आज्ञा मोक्ष रूपी फल प्रदान करने वाला कल्पवृक्ष है ।

जो पुण्यवंत आत्मा अरिहंत की आज्ञा का भाव से स्वीकार व पालन करती है, वह अल्प काल में ही उस संसार-सागर से पार हो जाती है ।

धन साधन हो, साध्य नहीं

पैसा जीवन का साधन होना चाहिए, साध्य नहीं ।
उसी प्रकार साधना मार्ग में
आगे बढ़ने के लिए शरीर को साधन
बनाना चाहिए, साध्य नहीं !
जिसने धन को अपने जीवन का
साध्य बना दिया, उसका जीवन
पतन के गर्त में डूबे बिना नहीं रहता है ।
शरीर को साधन बनाए, साध्य नहीं ।

43

प्रभु की आज्ञा पर विश्वास खूब जरूरी है

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 24-07-2019**

संसार का सारा व्यवहार विश्वास के आधार पर चलता है । जीवन जीने में कदम-कदम पर हम अनेक व्यक्तियों और वस्तुओं पर विश्वास करते हैं । श्वास से भी अधिक विश्वस के आधार पर जीवन चलता है ।

विमान या रेल की सफर करने वाला कभी भी ड्रायवर की मुलाकात नहीं लेता, सीधा ही अपनी आरक्षित सीट पर जाकर बैठ जाता है । वाहन-चालक कितना शिक्षित है, या उसे वाहन चलाने का कितना अनुभव है, कोई नहीं देखने जाता । बस, निश्चिंत होकर अपने स्थान पर बैठ जाता है और वाहन के चलने पर अपने स्थान पर पहुँच जाता है ।

बाजार की दुकान और ठेले पर प्राप्त भोजन सामग्री एवं शाक सब्जी खरीद कर विना किसी शंका के उपभोग कर लेते हैं । कभी उन पर लेबोरेटरी टेस्ट नहीं करवाते हैं ।

बालक के जन्म पर बालक का संबंध मात्र माता से होता है । वह मात्र अपनी माता को पहिचानता है । पिता, भाई आदि सारे संबंधों का ज्ञान उसे माता के विश्वास से ही होता है ।

शिक्षक भी विद्यार्थी को जो ज्ञान देता है उस पर विद्यार्थी आँख मूंद कर विश्वास कर लेता है । कभी तर्क नहीं करता कि दो और दो, चार ही क्यों होते है, पाँच क्यों नहीं ? माता-पिता भी अपने बच्चों के ज्ञानाभ्यास के लिए अनजान ऐसे शिक्षकों को सौंप देते हैं ।

जैसे जीवन के हर व्यवहार में विश्वास जरूरी है, वैसे ही आत्मा के विकास स्वरूप धर्म की आराधना में भी परमात्मा के वचनों पर पूर्ण विश्वास जरूरी है ।

जैसे ईजिन के बिना रेलगाड़ी के डिब्बे भले चाहे कितने ही आकर्षक एवं सुंदर क्यों न हो, वे गंतव्य स्थान पर पहुँचाने में असमर्थ हैं ।

घर का फर्नीचर, रंग, दीवार, फ्लोरिंग या सीलिंग आदि चाहे कितने ही सुंदर क्यों न हो, बिल्डिंग की नींव कमजोर हो, तो उस घर में रहना कोई पसंद नहीं करेगा । क्योंकि वह घर कभी भी धराशायी होकर जानलेवा सिद्ध हो सकता है ।

वैसे ही परमात्मा के वचनों पर पूर्ण विश्वास स्वरूप समकित के अभाव में जीवन में स्वीकार किये गये व्रत, नियमों का पालन एवं दान-पुण्य के सत्कार्य भी मोक्ष प्रदायक नहीं हो सकते हैं ।

दुनिया में अधिकांश लोग संज्ञा प्रधान हैं । वे व्यवहार एवं धर्म के कार्य भी मात्र देखा-देखी या बिना कुछ सोचे-विचारे ही करते हैं । कुछ पढ़े-लिखे लोग प्रज्ञा प्रधान होते हैं । हर विषय पर तर्क-वितर्क करके जो बातें उनके दिलो-दिमाग में सिद्ध हो उसे ही स्वीकार करते हैं । अतीन्द्रिय तत्त्वों पर उन्हें कभी भी विश्वास या स्वीकार नहीं होता है ।

परंतु खूब-अल्प जीव होते हैं, जो श्रद्धा प्रधान होते हैं । श्रद्धा-प्रधान आत्माएँ परमात्मा की आज्ञा के अनुसार जीवन जीने में प्रयत्नशील रहती हैं । वर्तमान में लोग श्रद्धाजीवी के बदले बुद्धिजीवी बने हैं । श्रद्धा प्रधान आत्माएँ ही अपनी आत्मा का कल्याण करने में समर्थ बन पाती हैं । अतः बुद्धिजीवी के बदले श्रद्धा जीवी बनने का विशेष प्रयत्न करना चाहिए ।

44

स्वाध्याय से दूर होती है मन की चंचलता

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 25-07-2019**

हमारे हृदय में पैदा होने वाले शुभ भाव और धार्मिक मनोरथों की रक्षा के लिए स्वाध्याय एक अमोघ उपाय है । स्वाध्याय अर्थात् आत्म भाव में रमणता करना । आत्मभाव में रमणता हेतु साधुजीवन में प्रतिदिन अधिक-से-अधिक स्वाध्याय करने की आज्ञा है ।

साधु की भाँति श्रावक को भी प्रतिदिन स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए । स्वाध्याय से श्रेष्ठ अन्य कोई तप नहीं है ।

जीवन में चाहे जितने गुणों को आत्मसात् किया हो, प्रतिकूल परिस्थिति खड़ी होते ही वे गुण हमारे जीवन में से चले जाते हैं ।

खूब प्रयत्न करके जीवन में क्षमा गुण को आत्मसात् किया और व्यक्ति क्षमाशील बना हो, परंतु जैसे ही किसी ने उसके ऊपर मजाक में झूठा आरोप लगा दिया हो, तब एकदम व्यक्ति को गुस्सा आ जाता है और क्षमाभाव दूर चला जाता है ।

इसी कारण पूर्वाचार्य महर्षियों ने स्वाध्याय पर खूब भार दिया है । बार-बार वैराग्यपूर्ण धर्मग्रंथों का स्वाध्याय, पठन-पाठन व चिंतन-मनन करने से अपना वैराग्य भाव पुष्ट होता है ।

हमारा मन खूब चंचल है उसे स्थिर करने के लिए ज्ञान ध्यान की प्रवृत्ति में सदैव लीन बनना चाहिए ।

मन रूपी अश्व को वश में रखने के लिए स्वाध्याय लगाम के समान है । लगाम और अंकुश से घोड़े और हाथी को स्थिर और वश में रखा जाता है । वैसे ही मन की चंचलता को वश करने हेतु स्वाध्याय करना चाहिए ।

हम पाँच प्रकार से स्वाध्याय कर सकते हैं । गुरु भगवंतों के उपदेशों का श्रवण करना-**वाचना** स्वरूप स्वाध्याय है । उनके उपदेश

श्रवण करते जो बाते समझ में नहीं आयी हो उनके विषय में गुरु से प्रश्न करके अपनी शंका का समाधान करना पृच्छना स्वरुप स्वाध्याय है ।

श्रवण किये धर्मोपदेश को कंठस्थ करके बार-बार उन्हे रटन करना-परावर्तना स्वाध्याय है । धर्मोपदेश के विषय में चिंतन मनन करके अपने तर्क से उन बातों को सिद्ध करना एवं तत्व का निश्चय बोध करना अनुप्रेक्षा स्वाध्याय है । एवं जिनवचनानुसार दूसरों को धर्म का उपदेश देना, धर्मकथा स्वाध्याय है ।

तारक तीर्थंकर परमात्मा ने केवलज्ञान के बल से जगत् के यथार्थ स्वरुप को जो जाना है, देखा है, उसी को जीवों के बोध के लिए धर्म देशना देते है । उसी धर्म देशना को पूर्वाचार्य महर्षियों ने प्रकरण ग्रंथों के स्वरुप में संग्रहित किया है । अतः जो कुछ भी श्रुतज्ञान हमें प्राप्त हुआ है वे परमात्मा के ही वचन है ।

नियमित रुप से स्वाध्याय करने से हमें भी नए नए पदार्थों का बोध होता है । तत्व के बोध से आत्मा में रहे कर्ममल का क्षय होता है और उत्तरोत्तर विकास करके आत्मा भी परमात्मा के समान अनंत ज्ञानी बन सकती है ।

परिवर्तन

किसी पापी को देख उसके प्रति धिक्कार भाव पैदा न करें । आज का पापी कल का महाधर्मी भी हो सकता है । वालिया लुटेरा वाल्मीकि बन गया । रोहिणेय चोर, अर्जुनमाली, चिलातिपुत्र तथा दृढ़ प्रहारी जैसी पापी आत्माएँ भी संत बन गई । जैसे बाह्य-जगत् परिवर्तनशील है, उसी प्रकार मानव का भाव जगत् भी परिवर्तनशील है । अच्छा व्यक्ति बुरा बन सकता है और बुरा व्यक्ति अच्छा भी बन सकता है ।

45

अंतरंग शत्रुओं को जीतना अति कठिन है

आर.एस.पूरम-कोयंबत्तुर **दि. 26-07-2019**

युद्ध के मैदान में हजारों शत्रुओं को हथियार के बल पर जीत लेना आसान है, परंतु आत्मा के अंतरंग शत्रुओं पर विजय पाना अत्यंत ही कठिन है । बाहर के लाखों शत्रुओं को जीतने वाला योद्धा भी आत्मा के भीतरी शत्रुओं के सामने हार खा जाते है ।

बाहर के शत्रुओं को पहिचानना आसान है, जबकि अंतरंग शत्रु को शत्रु के रुप में मानना और पहिचानना ही कठिन है, तो पहिचान कर उसके सामने लड़ना और निष्प्रकंपता से लड़कर जीत पाना और भी ज्यादा कठिन है ।

आत्मा का सबसे बड़ा और भयंकर शत्रु है 'काम' । सुंदर स्पर्श, स्वादिष्ट रस, मनोहर सुगंध, श्रृंगार सहित गोरा रुप एवं मधुर संगीत ये पाँचों पांच इन्द्रियों के विषय भोग है । इन विषयों का भोग करना ही काम है ।

पैसे को पाने के लिए जो मेहनत करता है, उसका लक्ष्य तो पांच इन्द्रिय के विषय भोगों को पाना ही होता है । इन पांच भोगों की प्राप्ति को ही हम सुख मानते है, जबकि ये पांच भोग ही आत्मा को अनंत दुःखों के गर्त मे ले जाने वाले हैं ।

पांच इन्द्रिय के विषय भोग जहरीले मीठे फल के समान है । उन फलों को खाते समय स्वाद तो मीठा लगता है और पेट भी भर जाता है, परंतु उसका परिणाम अत्यंत खतरनाक है । परिणाम में मात्र करुण मृत्यु ही है ।

विषय के भोग प्रारंभ में मीठे होते है लेकिन परिणाम में अति दुःखदायी एवं भयंकर है ।

पांच इन्द्रिय के विषय भोग हमारे मन में रागभाव पैदा करते है । जहाँ भी राग भाव होगा, उससे विपरीत वस्तु पर अवश्य द्वेष पैदा होगा ।

राग और द्वेष दोनों को जीतना कठिन है । क्षमा भाव से व्यक्ति द्वेष को जीत सकता है परंतु राग को जीतना अति कठिन है ।

प्रारंभ में मधुर लगने वाले विषयभोग की आसक्ति के कारण आत्मा इस संसार में भटकती है, और गर्भावास की भयंकर पीड़ाएँ सहन करती हैं । एक मानव-जन्म को पाने के लिए भी इस जीवात्मा को नौ-नौ मास तक गर्भ की कितनी भयंकर कैद सहन करनी पडी है । जन्म के बाद जीवन में रोग-शोक, आधि-व्याधि और उपाधि के कितने ही दुःख मजबूरी से सहन करने पड़ते हैं ।

भौतिक सुख की चाह में व्यक्ति दर-दर भटकता रहता है, परंतु अंश मात्र सुख की प्राप्ति भी नहीं होती है, और अपार दुःखों का अनुभव होता है ।

जिस प्रकार आकाश में ऊंचाई पर उड़ने पर भी गिद्ध की नजर तो श्मशान में रहे किसी मुर्दे पर ही होती है । बस, इसी प्रकार कामी व्यक्ति भी हमेशा काम का पिपासु बना रहता है और काम के निमित्तों को पाते ही उसकी जागृति हो जाती है ।

जिस प्रकार ईंधन से अग्नि को तृप्ति नहीं होती है, उसी प्रकार भोग द्वारा कामी व्यक्ति को तृप्ति नहीं होती है । संसार के भोग सुखों की विचित्रता है कि ज्यों-ज्यों उन सुखों का भोग किया जाता है, त्यों-त्यों भोग संबंधी भूख बढ़ती जाती है ।

क्रोध

क्रोध कषाय प्रत्यक्ष और परोक्ष में हानिकारक है । क्रोध के सेवन से शरीर में ताप पैदा होता है, अतः प्रत्यक्ष नुकसान है । क्रोध की विद्यमानता में दुर्गति के आयुष्य का बंध होता है, अतः परलोक को बिगाड़ता है । क्रोध का अनुबंध भव की परंपरा को बढ़ानेवाला है ।

46 धर्म ही आत्मा का सच्चा साथी है

आर.एस.पूरम-कोयंबत्तुर **दि. 27-07-2019**

धर्म ही आत्मा का सच्चा साथी है । धर्म की आराधना से आत्मा को शाश्वत सुख स्वरूप मोक्ष की प्राप्ति होती है तो उसके साथ ही संसार के उच्चतम सुख धर्म के प्रभाव से प्राप्त होते हैं ।

खेती करने वाले किसान का मुख्य लक्ष्य अनाज प्राप्त करना होता है, फिर भी घास आदि अनेक अन्य वस्तुएँ भी प्राप्त होती हैं । वैसे ही धर्म के प्रभाव से मोक्ष के सुख पाने का ही लक्ष्य होना चाहिए । संसार के उच्चतम सुख तो स्वतः प्राप्त होते हैं ।

धर्म आत्मा को ऊपर उठाता है और पाप आत्मा को नीचे गिराता है । धर्म के प्रभाव से प्राप्त हुए सुख के साधनों में लीन न होकर जो अनासक्त भाव से उनमें लिप्त नहीं होता है, वही उत्तरोत्तर विकास कर सकता है ।

प्राप्त हुई पाँच इन्द्रियाँ आत्मा का विकास करने में सहायक बनती हैं और यदि इनको प्राप्त करके मात्र भोगविलास में डूबे रहे तो आत्मा, विकास के बजाय पतन के गर्त में डूबती है ।

पाँच इन्द्रियों में से एक भी इन्द्रिय क्षीण हो तो उस व्यक्ति को चारित्र-धर्म के लिए अयोग्य माना गया है । यद्यपि चारित्र भी आत्मा का ही गुण है, फिर भी उस चारित्र की प्राप्ति में सहायक रूप जो द्रव्य चारित्र-पाँच समिति और तीन गुप्ति के पालन स्वरूप है, उसके परिपालन के लिए पाँच इन्द्रियों की पूर्णता अत्यावश्यक है ।

जो आँख से अंधा है-वह ईर्यासमिति का पालन कैसे कर सकेगा ? वह शास्त्र अध्ययन कैसे कर पाएगा ? वह गुरु की भक्ति, प्रभु के दर्शन आदि कैसे कर पाएगा ?

जो कान से बहरा है-वह गुरु की आज्ञा कैसे सुन पाएगा ? यदि गुर्वाज्ञा का श्रवण ही न हो तो उसका पालन कैसे हो सकेगा ?

यदि व्यक्ति मूक है, तो वह अपने हृदय के भावों को कैसे व्यक्त कर पाएगा ? यदि हाथ कटा हुआ है तो गोचरी, प्रतिलेखना आदि की क्रियाएँ कैसे कर पाएगा ?

यदि पैर से लंगड़ा हो तो विहार आदि कैसे कर पाएगा ? व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से एकदम कमजोर होगा तो वह अपने चारित्र संबंधी उपकरणों को कैसे उठा पाएगा ?

सामग्री के अभाव में सद्आचरण नहीं करने वाला कम गुन्हेगार है, जबकि सानुकूल सामग्री मिलने के बाद भी जो व्यक्ति उस सामग्री का पूरा सदुपयोग नहीं करता है, वह व्यक्ति अधिक गुन्हेगार माना जाता है।

रामायण का आदर्श

रामायण में त्याग के आदर्श हैं।
किसी के अधिकार को छीनने की
बात तो दूर रही, अपने अधिकार की
वस्तु को भी सहजता से छोड़ देना,
यह रामायण सिखाती है।
इसी कारण युगों बीतने के बाद भी
आज राम के आदर्श जीवित हैं।
जहाँ त्याग के लिए लड़ाई होगी,
वहाँ रामराज्य आए बिना नहीं रहेगा और
जहाँ अधिकार के लिए लड़ाई होगी,
वहाँ हराम-राज्य आए बिना नहीं रहेगा।

47 माता-पिता के उपकार चुकाये नहीं जा सकते

आर.एस.पूरम्-कोयंबत्तुर **दि. 28-07-2019**

पशु और मनुष्य में सबसे बड़ा अंतर **'परिवर्तन'** की संभावना का है। पशु का जन्म पशु की तरह होता है तो जीवन और मरण भी पशु की तरह ही होता है।

उसके जीवन में प्रायः परिवर्तन नहीं होता है। जबकि मनुष्य के जीवन में परिवर्तन की शक्यता है। मनुष्य के रूप में जन्म लेकर मनुष्य शैतान भी बन सकता है, पशु भी बन सकता है, सज्जन भी बन सकता है और देवता का जीवन भी जी सकता है।

जन्मा हुआ बालक पशुवत्-अज्ञानी होता है। पशु की तरह उसके मात्र दो काम हैं ''खाना और सो जाना''। पशुवत् अज्ञानी बालक को सज्जन मनुष्य बनाने का कार्य माता-पिता करते है। माता-पिता मात्र जन्म ही नहीं, जीवन के साथ संस्कार भी देते हैं।

बालक को मात्र जन्म देना और उसके देह का पालन-पोषण करना, इतने में माता-पिता का कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता है। संतान को जन्म देना और उसके भोजन आदि की चिंता करना, यह तो पशु-पंखी भी करते हैं। देवो को दुर्लभ, ऐसे मानव-जन्म की प्राप्ति के बाद आत्म-हित की प्रवृत्ति करना, इसी में मानव-जीवन की सफलता व सार्थकता है।

जो माता-पिता सिर्फ संतान के देह की चिंता करते हैं, किंतु संतान के आत्म-हित की चिंता नहीं करते हैं, उन्हें तो संतान के दुश्मन कहा गया है। आत्महित की चिंता करने वाले एवं संस्कार देने वाले माता-पिता ही सच्चे माता-पिता हैं।

अपने शरीर की चमड़ी के जूते बनाकर भी माता-पिता को पहनाए तो भी उनके उपकारों का बदला चुकाया नहीं जा सकता है। पुत्र जीवन पर्यंत माता-पिता की अच्छी तरह से सेवा करे, तो भी उनके ऋण से मुक्त नहीं हो सकता है।

इस मनुष्यलोक में मानव के वेष को धारण करनेवाले करोड़ों मनुष्य हैं, परंतु उनमें कई तो पशु से भी अधिक बदतर जीवन जी रहे हैं, तो कई मानव के वेष में भी शैतान से कुछ कम नहीं हैं ।

कुत्ती के पिल्ले अपनी माँ के पीछे तब तक दौड़ते हैं, जब तक वे अपने पाँव पर खड़े रहना नहीं सीखते हैं । ज्योंही वे बड़े हो जाते हैं, अपनी माँ को भूल जाते हैं । वैसे ही कई संतानें पत्नी की प्राप्ति न हो तब तक माँ-बाप के साथ रहने वाले होते हैं, उसके बाद माता-पिता को छोड़कर स्वतंत्र जीवन जीने वाले मनुष्य नराधम ही हैं ।

कई संतानें ऐसी भी होती हैं, जो माता-पिता के पास जब तक धन-वैभव है, तब तक उनकी सेवा शुश्रूषा करते हैं । धन के अभाव में बूढ़े माता पिता की वृद्धावस्था की फिक्र किये बिना वृद्धाश्रम में छोड़ देते हैं ।

परंतु उत्तम मनुष्य तो जीवनपर्यंत अपने वृद्ध माता-पिता की जी-जान से सेवा करते हैं । अपने देह का पालन-पोषण करके माता-पिता ने जो उपकार किया है, उस उपकार के ऋण में से मुक्त होना अशक्य है । उस ऋण में से मुक्त होने का प्रयास करना तो दूर रहा, परंतु जो व्यक्ति उन्हीं माता-पिता से धन की आशा रखते हैं, यह नीचता की ही निशानी है ।

उत्तम पुरुष कभी भी माता-पिता से धन की अपेक्षा नहीं रखते हैं, बल्कि उनकी जीवन पर्यंत सेवा करते हैं ।

माता-पिता, गुरु आदि वडिलजनों के आशीर्वाद में बडी शक्ति है । जिसने अपने जीवन में बड़ों का आशीर्वाद प्राप्त नहीं किया, उसका जीवन निरर्थक है । माता-पिता के आशीर्वाद से कठिन काम भी सरल बन जाते है ।

पश्चिमी संस्कृति के अंधानुकरण एवं जीवन में स्वार्थवृत्ति के बढ़ने से जीवन अस्तव्यस्त हुआ है । पहले किसान अपने जानवरों को जीवनभर सँभालते थे । आज स्वार्थ बढ़ने से, जब तक काम करे, तब

तक उन्हे सँभालते हैं, बाद में आवारा पशु की तरह छोड देते है । उनके पालन-पोषण के लिए पांजरापोल का निर्माण हुआ । वैसे ही पशु की तरह माता-पिता के साथ भी वही व्यवहार होने लगा है । उनके रक्षण के लिए वृद्धाश्रम का निर्माण हुआ । ये वृद्धाश्रम भारतीय संस्कृति के लिए कलंक समान हैं ।

प्रत्येक संतान का कर्तव्य है कि माता-पिता की आजीवन सेवा करके उनके दिये हुए संस्कारों को जीवंत रखे ।

अंतरंग सुख

बाह्य सुख का आधार
स्वस्थ शरीर है,
जब कि अंतरंग सुख का
आधार स्वच्छ मन हैं ।
जिसका मन साफ नहीं है,
मन में पाप है,
मन में मलिनता है,
मन में माया-कपट है,
ऐसा व्यक्ति बाहर से
सुखी हो सकता है,
परंतु भीतर से तो
महादुःखी ही होता है ।
आत्म-निरीक्षण
अवश्य करें ।

48

परमात्मा के अभिषेक से आत्मा निर्मल बनती है

आर.एस.पूरम-कोयंबत्तुर **दि. 29-07-2019**

परमात्मा की भक्ति में भावविभोर बने इन्द्र महाराजा ने सम्राट विक्रमादित्य को धर्मबोध देनेवाले **आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकरसूरिजी** को यह **वर्धमान शक्रस्तव** प्रदान किया है ।

इस वर्धमान शक्रस्तव में तीर्थंकर परमात्मा के 273 विशेषण बताए हैं । परमात्मा की भक्ति, पुण्य का अर्जन करने के लिए सर्वश्रेष्ठ उपाय है ।

एक करोड़ पूजा से अधिक लाभ, परमात्मा के गुणों से भरे स्तोत्र के पठन में होता है । क्योंकि पूजा में तो मात्र काया को ही जुड़ना होता है, जबकि स्तोत्र से होने वाली भक्ति में, मन, वचन और काया तीनों को जुड़ना होता है ।

जब मन-वचन और काया की एकाग्रता से कोई साधक इस वर्धमान शक्रस्तव का स्मरण करता है, तब उसमें तल्लीन बने व्यक्ति को मोक्ष में होने वाले सहजानंद का अनुभव इस कलिकाल में भी होता है ।

मंत्रोच्चार के पठन में कर्मक्षय की अकल्पनीय शक्ति रही हुई है । परमात्मा को नमस्कार के भाव से **'नवकार मंत्र'** के एक-एक अक्षर से 7-7 सागरोपम के पापों का क्षय होता है । नमस्कार में अजब की शक्ति रही है । नमस्कार के माध्यम से मोक्ष में रहे परमात्मा का हमारे हृदय में वास होता है ।

जब परमात्मा हृदयमंदिर में पधारते हैं, तब जीवन में गुणवृद्धि का अपूर्व कार्य होता है । पापी-निष्पापी बनता है, रोगी-निरोगी बनता है, मलिन-निर्मल बनता हैं । परमात्मा के सान्निध्य से सौभाग्य खिलता

है, कर्म का नाश होता है, आत्मा निर्विकारी बनती है, आत्मा में से मोह का जहर नाश होता है ।

परमात्मा के जन्म समय इन्द्रमहाराजा, करोड़ों देवताओं के साथ मेरुपर्वत पर परमात्मा का जन्माभिषेक करते हैं । करोड़ों कलशों से परमात्मा के अभिषेक की शक्ति के अभाव में, हमारी जितनी भी शक्ति हो, यथाशक्ति परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए, क्योंकि परमात्मा का अभिषेक करने से हमारी आत्मा निर्मल एवं परमात्म पद को प्राप्त करती है ।

धर्म का स्वभाव

धर्म का यह सहज स्वभाव है–
वह दुःख को दूर हटाता है
परंतु कदाचित् निकाचित पाप कर्म
का उदय हो तो कभी
दुःख दूर न भी हो,
परंतु वह धर्म जीवन में
समाधि तो अवश्य देता है ।
जहाँ समाधि होगी, वहाँ बाह्य दृष्टि
से दुःख होने पर भी
वास्तव में तो
सुख की अनुभूति
ही होनेवाली है ।

49

रसनेन्द्रिय जय का उपाय है आयंबिल तप ।

आर.एस.पूरम-कोयंबत्तुर **दि. 30-07-2019**

रसनेन्द्रिय जय का सर्वश्रेष्ठ उपाय हैं आयंबिल तप । आयंबिल में हर प्रकार के स्वाद का त्याग होता है । आयंबिल में भोजन के सभी रसों का त्याग होता है । दूध, दही, घी, तेल, गुड़ और तले हुए मिष्टान्न आदि सभी विगइयों का, समस्त प्रकार के फ्रूट / फलों का, सभी प्रकार के मेवों का तथा सभी प्रकार की हरी वनस्पति का आयंबिल में त्याग होता है ।

आयंबिल में रसयुक्त भोजन का त्याग ही नहीं है किन्तु नीरस भोजन का सेवन भी है । और इसी कारण एक अपेक्षा से उपवास के बजाय आयंबिल करना कठिन गिना गया है ।

उपवास में सभी प्रकार के आहार का त्याग है, जब कि आयंबिल में स्वादयुक्त भोजन का त्याग और रसहीन भोजन का सेवन भी है, अतः दोनों ओर से रसनेन्द्रिय के ऊपर प्रहार होता है ।

उपवास का सेवन निरंतर नहीं किया जा सकता है, जबकि आयंबिल तप का आचरण जीवन पर्यंत किया जा सकता है । एक साथ में सैकड़ों आयंबिल करनेवाले तपस्वी इस काल में भी मौजूद हैं । आयंबिल में चौबीस घंटे में एकबार भोजन लिया जाता है ।

आयंबिल का भोजन भी सात्त्विक होता है । शरीर के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए आवश्यक शक्तिदायक तत्त्व आयंबिल के भोजन से प्राप्त हो सकते है और इस कारण आयंबिल का तपस्वी दीर्घकाल तक इस तप का आचरण करते हुए भी अपने जीवन में स्फूर्ति आदि का अनुभव कर सकता है ।

ठीक ही कहा है :-**'रसा रोगस्य कारणम्'** रस ही रोग के कारण हैं । अत्यंत मधुर मीठे मिष्टान्न, मसालेदार भजिए, दहीबड़े, खमण तथा अन्य नमकीन आदि के घोर व्यसनों के कारण अनेकों की देह में अजीर्ण, बुखार, गैस, ब्लडप्रेशर, हार्टएटेक, मंदाग्नि तथा एडस् आदि के भयंकर रोग पैदा हुए हैं ।

अंधापन

आँख के अन्धेपन से भी मोह का अंधापन भयंकर है ।
अंधे व्यक्ति को तो, जो है, वह दिखता नहीं है,
जब कि मोहांध व्यक्ति को तो जो नहीं है,
वह दिखता है । मोहांध व्यक्ति नश्वर पदार्थों में
शाश्वतता के दर्शन करता है ।
मानव के क्षणिक व नाशवंत सौंदर्य में
शाश्वतता के दर्शन करता है ।

रोग और दोष

शरीर में पैदा हुआ रोग हर व्यक्ति को
भयंकर लगता है, जब कि आत्मा में
रहे दोष भयंकर नहीं लगते हैं ।
शारीरिक रोग से जो हानि है, उससे अनेक
गुणा नुकसान आत्मा में रहे दोषों से है ।
दोषों की भयंकरता को समझनेवाला ही
उन दोषों से बचने का पूरा-पूरा प्रयास
करेगा । याद रखें-रोगों से भी
दोष अति भयंकर हैं ।

50 सत्त्वशाली थे आचार्यश्री रामचन्द्रसूरीश्वरजी

आर.एस.पूरम-कोयंबत्तुर **दि. 31-07-2019**

जीवन में सत्त्व गुण सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है । जहाँ सत्त्व गुण होता है, वहाँ अन्य सभी गुण एवं समृद्धि स्वतः चलकर आती हैं । **पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** के जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण गुण था **'सत्त्व'** । सिंह के समान वे सत्त्वशाली थे ।

अतीत में हुए तीन राम ने रक्षा और सुरक्षा के लिए लड़ाई लड़ी है । रामायण के श्री रामचन्द्रजी ने सीता सती के शील की रक्षा के लिए रावण के साथ लड़ाई की । 900 वर्ष पूर्व हो चुके श्री हेमचन्द्राचार्यजी के शिष्य श्री रामचन्द्रसूरीश्वरजी ने गुरु-आज्ञा के पालन के लिए अपना आत्म-बलिदान दिया तो 125 वर्ष पूर्व हुए आत्मारामजी महाराज ने प्रतिमा पूजन एवं आचारों में शिथिलता के विरोध में विजय हासिल की थी ।

ऐसी ही लड़ाई दीक्षा धर्म एवं शासन की सुरक्षा के लिए पूज्य आचार्य श्री रामचन्द्रसूरीश्वरजी ने लड़ी थी । उन्होंने अपने प्रवचनों से एवं शुद्ध साध्वाचार के पालन से जन-जन के मन में शुद्ध धर्म का स्वरूप समझाया था ।

जब सारी दुनिया पैसा और विषय-भोग में रत थी तब उन्होंने अपने प्रवचनों के माध्यम से हजारों के हृदय में वैराग्य दीप प्रकट कर आत्म-रमणता की सच्ची दिशा प्रदान की थी । उनकी वैराग्यमय धर्मदेशना से बालक-युवान और वयोवृद्ध लोग भी त्यागमार्ग में आगे बढ़े थे ।

उनका धर्मोपदेश सिर्फ अन्य के लिए नहीं था, बल्कि वे स्वयं भी उस उपदेश को अपने जीवन में उतारते थे । इसी के फलस्वरूप जहां राम वहाँ अयोध्या के नियमानुसार हर व्यक्ति उनका उपासक बन जाता था ।

अपने आश्रित शिष्यगणों के साथ-साथ उन्होंने अपने दीक्षागुरु श्री प्रेमसूरीश्वरजी म.सा. को भी जीवन के अंतिम समय में समाधि प्रदान की थी। अपने जीवन में आए अनेक संघर्षों में भी समता भाव की साधना कर अंतिम समय में अनेक हृदय के हमलों को सहन कर आज से 28 वर्ष पूर्व समाधिमरण प्राप्त किया था।

कर्म का नाश

आत्मा के विकास के लिए
ज्ञान और क्रिया दोनों की अपेक्षा है।
सिर्फ ज्ञान से मोक्ष नहीं, सिर्फ क्रिया से मोक्ष नहीं।
ज्ञानपूर्वक क्रिया करने से ही
आत्मा का मोक्ष हो सकता है।

मोहाधीन आत्मा

सुअर गंदगी में ही जन्म लेता है,
गंदगी में ही जीवन बिताता है और गंदगी में
ही मरता है।
मोहाधीन आत्मा पौद्गलिक भाव में ही
जन्म लेती है, पौद्गलिक भाव में ही
जीवन बिताती है और पौद्गलिक भाव
में ही मर जाती है।
पुद्गल की ममता हितकर नहीं है,
पुद्गल का राग, भव की परंपरा को
बढ़ानेवाला है। पुद्गल की ममता छोड़ें
और आत्म स्वरुप में रमणता करें।

51 विनय से प्राप्त होता है सम्यग्ज्ञान

आर.एस.पूरम-कोयंबत्तुर **दि. 01-08-2019**

वीतराग परमात्मा अपनी धर्मदेशना के माध्यम से संसार की भयानकता और मोक्ष की सुंदरता का बोध देते हैं । संसार से मुक्ति और मोक्ष की प्राप्ति के लिए पाँच प्रकार के आचारों का उपाय बताते हैं ।

ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार स्वरूप इन पंचाचार के पालन से परमात्मा ने मोक्ष की साधना बतलाई है, जो प्रत्येक साधु को आजीवन एवं श्रावक को यथाशक्ति करनी चाहिए ।

आत्मा का मूल स्वभाव है अनंत ज्ञान, परंतु कर्मों के आवरण से हमारी आत्मा, अज्ञान से घिरी हुई है । आत्मा तो अनंत ज्ञानी है, फिर भी कर्मों का आवरण होने से उसे ज्ञान का प्रकाश नहीं मिलता । ज्ञान के इस आवरण को दूर करने के लिए ज्ञान की आराधना करनी चाहिए ।

ज्ञान की प्राप्ति गुरु से होती है । ज्ञान पाने के लिए गुरु के प्रति विनय और बहुमान भाव धारण करना चाहिए । विनय अर्थात् शरीर से होनेवाला उचित आचरण । गुरु के आने पर खड़ा होना, उनके प्रवचन में उनसे पहले पहुँचना, उनके आसन से नीचे बैठकर, उत्सुकता से उनके वचन का श्रवण करना आदि सब कुछ विनयोपचार है । विनय के साथ बहुमान भाव भी जरूरी है ।

बहुमान यानी हृदय में उनके प्रति आदर-भाव ! हृदय में बहुमान भाव तभी आ सकता है, जब हमें अपनी अल्पज्ञता और उनके विशिष्ट ज्ञान का भाव हो ! जब हृदय बहुमान का भाव होता है में तो स्वतः विनय हो जाता है ।

गुरु के प्रति रहा विनय और बहुमान भाव अल्पज्ञानी को भी पूर्ण ज्ञानी बना देता है । गुरु के प्रति विनय और बहुमान भाव न हो तो प्राप्त ज्ञान भी आत्मा को कल्याण के मार्ग में आगे बढ़ा नहीं सकता है ।

सद्गुरु की सेवा, सद्गुरु की भक्ति, सद्गुरु की शुश्रूषा ही परम गुरु वीतराग परमात्मा के साथ योग कराती है । जो आत्माएँ सद्गुरु को छोड देती हैं, वे आत्माएं कभी भी परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकती है ।

सद्गुरु की सेवा और उनकी शरणागति, वीतराग परमात्म-स्वरूप परम गुरु की सेवा और शरणागति है । जिसने सद्गुरु के चरणों में अपना जीवन समर्पित कर दिया, उस आत्मा का शीघ्र ही उद्धार हो जाता है ।

ज्ञान, ध्यान, तप-जप की साधनाएँ भी जीवन में तभी फलीभूत होती हैं, जब जीवन में सद्गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण भाव होता है ।

सद्गुरु ही हमारे आत्म-गुणों के रक्षक और अंतरंग शत्रुओं के नाशक हैं । उनके सान्निध्य में ही हमारा रक्षण और विकास है । जिस प्रकार नवजात शिशु का रक्षण माँ की गोद में ही है, उसी प्रकार हमारी आत्मा का रक्षण सद्गुरु की शरणागति में है । इसलिए आत्मसाधक आत्मा के लिए सद्गुरु के समीप रहने का विधान है ।

संसार में चारों ओर मोह का जाल बिछा हुआ है, ऐसे संयोगों में मोक्षमार्ग की आराधना व साधना अत्यंत ही दुष्कर है । सद्गुरु के समागम के बिना इस संसार-सागर से पार उतरना अत्यंत कठिन है । सद्गुरु वे कुशल नाविक हैं, जो हमारी जीवन नैया को भवसागर के उस पार ले जाते हैं ।

संभावना

सत् युग में भी खराब लोगों के दर्शन होते हैं
और कलियुग में भी अच्छे लोगों के दर्शन हो सकते हैं ।
जैसे लंका में भी बिभीषण पैदा हो सकते हैं और
अयोध्या में भी मंथरा पैदा हो सकती है ।

52

अपनी योग्यता विकसित करें ।

आर.एस.पूरम-कोयंबत्तुर दि. 02-08-2019

जितना बडा प्लॉट होता है, उतना बडा मकान नहीं होता है, क्योंकि मकान के चारों ओर कुछ खाली जगह अवश्य छोड़नी पड़ती है ।

जितना बड़ा मकान होता है, उतना बड़ा दरवाजा नहीं होता है । दरवाजा मकान से छोटा होता है । जितना बड़ा दरवाजा होता है, उतना बड़ा ताला नहीं होता है और जितना बड़ा ताला होता है, उतनी बड़ी चाबी नहीं होती है ।

एक-डेढ़ इंच की छोटीसी चाबी में ताला खोलने की ताकत रही है और उसके द्वारा बहुत बड़े मकान में भी आसानी से प्रवेश प्राप्त किया जा सकता है । बस, प्रभु के मुखारविंद से निकली यह त्रिपदी उस चाबी के स्थान पर है, जो गणधर भगवन्तों के भीतर रहे श्रुत के अमाप खजाने को खोल देती है ।

प्रभु मात्र त्रिपदी सुनाते है और उससे गणधर भगवन्तों को श्रुत का ऐसा क्षयोपशम हो जाता है कि जिसके फलस्वरूप वे एक अन्तर्मुहूर्त में समग्र द्वादशांगी की रचना कर लेते हैं, जिसमें समस्त 14 पूर्वों का समावेश हो जाता है ।

लोकव्यवहार में भी हम देखते हैं कि हर किसी डॉक्टर को ऑपरेशन करने का अधिकार नहीं मिलता है । उसके लिए योग्यता स्वरुप डिग्री भी चाहिए ।

हर किसी व्यक्ति को गाडी-ट्रेन या प्लेन चलाने का अधिकार नहीं मिल जाता है, उसके लिए योग्यता स्वरुप लाइसेंस भी चाहिए ।

हर कोई व्यक्ति हथियार नहीं रख सकता है, उसके लिए भी योग्यता व लाइसेंस चाहिए ।

बस, इसी प्रकार वीतराग प्रभु के मुख से निकले हुए इस श्रुत को पढ़ने का अधिकार हर किसी को ऐसे ही नहीं मिल जाता है ।

जिन-आगम को **'गणि पिटक'** कहा जाता है । यहाँ गणि का अर्थ आचार्य है और पिटक का अर्थ पेटी है । अर्थात् ये आगम आचार्यों की मालिकी के हैं । इनका अध्ययन योग्यता प्राप्त, योगोद्वहन किए हुए साधु भगवन्त ही कर सकते हैं ।

जब किसी साधु में योग्यता विकसित होती है, तब आचार्य भगवन्त उन्हें उन-उन सूत्रों के योगोद्वहन कराते हैं । इस योगोद्वहन की साधना द्वारा गुरु-भगवन्त उन्हें वे-वे सूत्र पढ़ने का अधिकार देते हैं । हर कोई व्यक्ति या गृहस्थ इन आगमों को पढ़ने का अधिकारी नहीं है ।

योग्य व्यक्ति के हाथ में आग है तो रसोई पकाने का काम करती है, अन्यथा वही आग मौत का कारण बन जाती है ।

शस्त्र आदि योग्य व्यक्ति के हाथ में हो तो रक्षण का काम करते हैं, अन्यथा वे ही शस्त्र उसी की मौत का कारण बन जाते हैं । बस, इसी प्रकार योग्य व्यक्ति को प्राप्त ये शास्त्र लाभ का कारण बनते हैं और अयोग्य व्यक्ति को प्राप्त ये ही शास्त्र, शस्त्र रुप बन जाते हैं ।

परिग्रह

राहु आदि नौ ग्रहों से भी सबसे
ज्यादा भयंकर ग्रह है–परिग्रह !
आश्चर्य है कि उससे तीनों लोक के जीव पीड़ित हैं ।
मानव राहु आदि ग्रहों के बंधन से मुक्ति चाहता है
जबकि आश्चर्य है कि परिग्रह के
ग्रह से मुक्त होने के बजाय स्वयं
उसे पकड़ने की कोशिश करता है ।

53

संसार दावानल के समान है

आर.एस.पूरम-कोयंबत्तुर दि. 03-08-2019

मकान में लगी थोड़ी सी आग का ख्याल आते ही व्यक्ति अपने घर-परिवार आदि सब छोड़कर भागने लगता है । रात के बारह बजे, गाढ़ निद्रा में होने पर भी आग से बचने के लिए वह भागने लगता है । क्योंकि मरना किसी को पसंद नहीं है ।

वैसे ही यह सारा संसार आग से जल रहा है । चारों ओर क्रोधादि कषायों की आग लगी हुई है । यह आग जंगल में लगी आग स्वरूप दावानल के समान है, जिससे मुक्त होना अत्यंत ही कठिन है ।

मकान की आग मात्र एक जन्म का नाश करती है, जबकि क्रोधादि की आग तो जन्म-जन्मों तक आत्मा का भयंकर नुकसान करने वाली है । दिन-रात इन क्रोधादि कषायों की आग में हम झुलस रहे हैं, फिर भी इस आग से हमें भय नहीं लग रहा है ।

मरण के भय से हर कोई व्यक्ति डरता है, वैसे धर्म को समझी हुई आत्मा को संसार के जन्म-मरण का भय लगता है । उसकी दृष्टि में यह संसार यानी जहाँ समस्या का कोई अंत नहीं है, जहाँ दुःख का पार नहीं और सुख का अंश नहीं है । ऐसे संसार से मुक्त होकर उसे सदैव मोक्ष की चाह होती है । मोक्ष-संसार से विपरीत है । मोक्ष यानी जहाँ समस्या का कोई अंश नहीं है और समाधान का अंत नहीं है । जहाँ सुख का पार नहीं और दुःख का अंश नहीं है ।

संसार के भयंकर दुःख भी हमें दुःखदायी नहीं लगते हैं, क्योंकि संसार में हमारे दुःखों के बीच भी सुख का एक अंश हमें लुब्ध कर देता है ।

जैसे चूहे को पकड़ने के लिए पिंजरे में रोटी का टुकड़ा डालते हैं, जिससे अज्ञानी चूहे पिंजरे में फँस जाते हैं । वैसे ही कर्मसत्ता ने हमें

संसार में फँसाने के लिए पाँच इन्द्रियों के सुख का टुकड़ा दिया है । इस टुकड़े के कारण संसार का त्याग मुश्किल हो जाता है ।

कोइ संगीत में डूबा है, कोई स्वाद में डूबा है, कोई स्त्री की आसक्ति में डूबा है । इन सुखों के अंश में हम आत्मिक सुख को भूल जाते हैं । नाशवंत सुख की चाह में हम शाश्वत सुख को गवाँ देते हैं ।

जिस संसार और सुख के साधनों को हम अपना मानते हैं, वास्तव में वे सब भाड़े के घर समान है । जैसे भाड़े के घर को एक दिन छोड़ना पड़ता है, वैसे ही आयुष्य और पुण्य का भाड़ा पूर्ण होते ही हमें ये सारी संपत्ति और ऐश्वर्य छोड़ना पड़ता है ।

इस संसार सागर से पार उतरने के लिए चारित्र-धर्म, नौका के समान है । जिसने अपने जीवन को चारित्र धर्म से पवित्र किया है, उसके जीवन में संसार का कोई भय नहीं रहता है ।

चारित्र धर्म का पालन भी इच्छानुसार नहीं, बल्कि गुरुदेव के अधीन रहकर करना चाहिए । गुरु ही हमारी चारित्र रूपी नौका को पार कराते हैं । जैसे पारिवारिक डॉक्टर होता है, वैसे ही अपने जीवन को सुरक्षित रखने के लिए पारिवारिक गुरु की स्थापना भी करनी चाहिए ।

बुद्धिमत्ता

किसी को नीचा गिराने में बुद्धिमत्ता नहीं है । परंतु गिरे हुए को ऊपर उठाने में सच्ची बुद्धिमत्ता है ।
किसी को गिराना आसान है,
किसी को ऊपर उठाना कठिन है । ठीक ही कहा है–
ध्वंस बहुत आसान है, मगर निर्माण कठिन है ।
पतन बहुत आसान है, मगर उत्थान कठिन है ।।

54

वाद और स्वाद ही सभी समस्याओं का कारण हैं

आर.एस.पूरम-कोयंबत्तुर **दि. 04-08-2019**

मानव को प्राप्त पाँच इन्द्रियों में सबसे महत्त्वपूर्ण है **'जीभ'**। अन्य चारों इन्द्रियों के पोषण का कार्य भी जीभ से होता है। कान और आँख-दो-दो होने पर भी इनका एक कार्य है। जबकि जीभ एक होने पर भी कार्य दो हैं-**'वाद और स्वाद'**।

जगत् की सारी समस्याओं का मूल कारण है **''वाद और स्वाद पर अनियंत्रण।''** वाद के अनियंत्रण में व्यक्ति नहीं बोलने के शब्द बोलता है, जो अनेक क्लेश और कलह को पैदा करता है और स्वाद की गुलामी में व्यक्ति मन चाहा भोजन खाता है और अनेक रोगों को सामने से बुलाता है।

व्यक्ति के जीवन में जीभ पर लगाम आ जाए, तो जीवन में होने वाले 80% झगड़े और रोगों का अंत आ जाता है। धनवान लोगों के अधिकतर धन का व्यय भी वकील और डॉक्टर के पीछे ही होता है।

जो विनाश तलवार, चाकू या अणुबम से होता है, उससे भी अधिक विनाश **शब्द** के माध्यम से होता है।

जीभ से बोले जाने वाले मीठे और सुंदर वचनों से हृदय को साता का अनुभव होता है। परंतु जीभ के कटु और मर्मघाती वचनों से जो घाव पैदा होते हैं, वे वर्षों तक भरे नहीं जाते हैं। चाकू-छुरी का घाव तो समय जाने पर भर जाता हैं, जबकि शब्दों का घाव पूरी जिंदगी भर भरा नहीं जा सकता है।

भोजन लेना तो अनपढ बच्चा भी सीख जाता है। परंतु उसे

बोलना सिखाना पड़ता है । फिर भी बचपन में ही बोलना सीखने पर भी क्या बोलना ? क्या नहीं बोलना ? सीख पाना अत्यंत कठिन है ।

मानवदेह को पाकर जो जन्म से बोल नहीं पाते हैं, वे जितने दयापात्र हैं, उससे भी ज्यादा दयापात्र वे लोग हैं, जो बोलना जानने पर भी क्या बोलना, क्या नहीं बोलना, नहीं जानते है ।

हाथी पर अंकुश, घोड़े पर लगाम, गाड़ी पर ब्रेक जरुरी है वैसे ही जीभ पर लगाम खूब जरूरी है ।

पशुओं को भी जीभ मिली है, परंतु वे मात्र भोजन ग्रहण कर सकते हैं, अपने हृदय के भावों को शब्द के माध्यम से व्यक्त नहीं कर सकते हैं । जबकि मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति है कि वह अपने हृदय के भावों को शब्दों में व्यक्त कर सकता है ।

प्राप्त हुई शक्ति का दुरुपयोग करने पर वही शक्ति दुर्लभ हो जाती है । इसलिए हमारे मुँह से अनादर, अपमान जनक, निंदा, आरोप, कठोर और कर्कश वचनों का प्रयोग कभी नहीं होना चाहिए । इन वचनों का प्रयोग अन्य को नुकसानकारी हो या न हो, परंतु हमें तो उसका नुकसान अवश्य होता है ।

अन्य के सामने एक अँगुली करने पर तीन अँगुली तो हमारे सामने ही खड़ी होती हैं ।

उपदेश

जेब में इंजेक्शन रखने से रोग नहीं मिटता है,
उसे तो शरीर में लेना पडता है, उसी प्रकार
प्रवचन के उपदेश सिर्फ कागज की डायरी में
लिखने (Note-down करने) से
काम नहीं चलता उसे तो दिल की
Diary में नोट करना चाहिए और
उसे जीवन में उतारने की कोशिश करनी चाहिए ।

55

जन्म कल्याणक की आराधना से जन्म का अंत

आर.एस.पूरम-कोयंबत्तुर **दि. 05-08-2019**

पृथ्वीतल पर तीर्थंकर परमात्मा का अस्तित्व अल्प काल के लिए होता है । तीर्थंकरों के आलंबन से मोक्ष में जाने वालों की अपेक्षा तीर्थ के आलंबन से मोक्ष में जानेवाली आत्माएं अनेक गुणी हैं, क्योंकि तीर्थ का आलंबन दीर्घ काल के लिए होता है ।

इस लोक में आये सभी तीर्थस्थानों में श्री शत्रुंजय एवं गिरनार तीर्थ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । इन तीर्थभूमियों के कण-कण के स्पर्श से अनंत आत्माएँ मोक्ष में गई हैं ।

इस अवसर्पिणी काल के 24 तीर्थंकरों के अधिकांश कल्याणक पूर्वोत्तर भारत भूमि में हुए हैं, जबकि 22 वें श्री नेमीनाथ भगवान के दीक्षा, केवलज्ञान एवं निर्वाण कल्याणक, गिरनार तीर्थ पर हुए हैं ।

तीर्थंकर परमात्मा के जन्म आदि प्रसंग हमें उनकी आराधना का आलंबन देते हैं । हमारा जन्म तो प्रायः संसार की वृद्धि कराने वाला है, जबकि तीर्थंकरों का जन्म उनके जन्म का अंत कराने वाला तो है ही, उनकी आराधना से हमारे जन्मों का भी अंत आता है ।

श्री नेमिनाथ परमात्मा की आत्मा ने पूर्व के 9 वें धनकुमार के भव में ग्लान साधु महात्मा की सेवा से सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था । वहाँ से प्रत्येक भव में उत्तरोत्तर विकास को पाकर पूर्व के तीसरे भव में शंख चक्रवर्ती के भव में संयम जीवन स्वीकार किया था ।

संयम की कठोर साधना के साथ अरिहंत आदि वीसस्थानकों की विशिष्ट आराधना करके तीर्थंकर नाम कर्म का बंध किया था । वहाँ से अपराजित देवविमान में 32 सागरोपम की दीर्घ स्थिति को निर्लेप भाव से पूर्ण कर शौरीपुरी के राजा समुद्रविजय की रानी शिवादेवी की

कुक्षी में अवतरित हुए थे । तब प्रभु की माता ने 14 महास्वप्नों के दर्शन किये थे ।

गर्भकाल व्यतीत होने पर श्रावण मास की पंचमी के शुभ दिन मध्यरात्रि में 22 वें श्री नेमिनाथ परमात्मा का जन्म हुआ था । प्रभु के जन्म को जानकर इन्द्र महाराजा ने मेरु पर्वत पर एवं पिता समुद्र विजय राजा ने अपने नगर में प्रभु का जन्म महोत्सव मनाया था ।

प्रभु ने अपने अंतिम जन्म में 300 वर्ष संसारवास में व्यतीत कर गिरनार तीर्थ भूमि पर 1000 राजकुमारों के साथ संयम व्रत स्वीकार किया था । 54 दिनों के बाद केवलज्ञान प्राप्त कर 700 वर्ष तक भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर गिरनार तीर्थ पर मोक्ष प्राप्त किया था ।

इसी के साथ गत चौबीसी के आठ तीर्थंकरों के दीक्षा, केवलज्ञान एवं मोक्ष तथा दो तीर्थंकरों के मोक्ष कल्याणक इस तीर्थ पर हुए थे । तथा आगामी चौबीसी के चौबीस तीर्थंकरों के मोक्ष कल्याणक एवं दो तीर्थंकरों के दीक्षा एवं केवलज्ञान कल्याणक भी इसी गिरनार तीर्थ पर होंगे ।

वर्तमान में इस तीर्थ के मूलनायक श्री नेमिनाथ प्रभु की प्रतिमा 1,65,735 वर्ष न्यून 20 कोड़ा कोड़ी सागरोपम वर्ष प्राचीन है ।

कठिन

काया को सदाचार में जोड़ना आसान है परंतु
मन को सद्विचार में जोड़ना कठिन है ।
दान, शील और तप
सरल हैं, क्योंकि ये काया
के विषय हैं, जबकि भावधर्म
कठिन है, क्योंकि वह मन का विषय है ।

56

कर्मसत्ता न्याय करती है

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 06-08-2019**

संसार की सभी आत्माएँ कर्मसत्ता और धर्मसत्ता के अधीन हैं । कर्म सत्ता का एक काम है, जो अच्छे कर्म करता है, उसे सुख-समृद्धि और शांति देती है और जो बुरे कर्म करता है, उसे दु:ख-दर्द और अशांति देती है । प्रत्येक आत्मा के अपने अच्छे-बुरे कर्म अनुसार इनाम अथवा सजा अवश्य देती है ।

कर्म-सत्ता से भी बलवान है धर्म सत्ता । जैसे सर्वोच्च न्यायालय ने किसी व्यक्ति को फाँसी की सजा दी हो तो वह व्यक्ति सजा से मुक्त होने के लिए राष्ट्रपति के पास याचना कर सकता है । राष्ट्रपति चाहे तो उसकी सजा माफ भी कर सकता है ।

वैसे ही कर्मसत्ता से प्राप्त सजा की मुक्ति धर्मसत्ता की शरण में जाने से हो सकती है । धर्मसत्ता की शरण से आत्मा कर्म की कठोर सजा से भी मुक्त होकर आत्मोत्कर्ष प्राप्त कर सकती है ।

जीवन भर हिंसाचरण करने वाला भी जीवन के अंतिम समय में परमात्मा एवं धर्म की शरण स्वीकार कर अपने पापों का पश्चात्ताप करे तो धर्म की अचिन्त्य शक्ति सब पाप नाश कर देती है ।

यदि पाप-कर्मों से मुक्ति पानी हो तो पाप का स्वीकार एवं पश्चात्ताप करते हुए धर्म की शरण स्वीकार करनी चाहिए ।

मकान में लगी थोड़ी आग शांत कर दी जाए तो वह अल्प प्रयास से हो सकती है और यदि उपेक्षा की जाए तो अनेक की मौत का कारण बन जाती है । कपड़ा यदि थोड़ा ही फटा हो और उसे सिलाई कर दी जाए तो वह कपड़ा अखंड रह सकता है अन्यथा फट जाता है ।

वैसे ही जब तक अपना पापाचरण अल्प प्रमाण में हो तो उसका स्वीकार करके पश्चात्ताप से शुद्ध किया जाय तो उस पाप की सजा से मुक्ति हो सकती है ।

पश्चात्ताप के आँसू की दो बूँदें भी पाप की सजा को धोने मे

समर्थ हैं, मात्र आवश्यकता है उस पाप को पाप रूप मानते हुए पुनः उस पाप का आचरण नहीं करने की ।

कारण के अभाव में कार्य की उत्पत्ति नहीं होती है । इस जगत् में कोई सुखी है तो कोई दुःखी है । इन सब का मुख्य कारण उन-उन जीवों का पूर्वोपार्जित कर्म है । अपने-अपने शुभ-अशुभ कर्म के अनुसार इस जगत् में जीवात्मा को सुख-दुःख की प्राप्ति होती है ।

कर्म जड़ होते हुए भी उसकी शक्ति अमाप है । स्वस्थ चित्त से संसार का अवलोकन करें तो सर्वत्र हमें कुटिल कर्म से पीड़ित अनेक प्राणियों की दुःखद घटनाएँ दिखाई देती हैं ।

सर्वत्र कर्म के फंदे में फँसे हुए दुःखी जनों की दर्द भरी कथाओं के करुण शब्द सुनाई दे रहे हैं ।

प्राणी कर्म के बंध-समय लेश भी विचार नहीं करता है, परंतु जब उसका परिणाम आकर खड़ा होता है, तब रोता है ।

पाप से मुक्ति का एक मात्र इलाज उन पापों की सद्गुरु के समक्ष स्वीकृति । सद्गुरु के आगे सच्चे हृदय से पापों का स्वीकार होना चाहिए । जैसे बालक अपनी माता को अपनी हर बात स्पष्टता से बता देता है वैसे गुरु के सामने हमें अपने पापों का सच्चे दिल से इकरार करना चाहिए ।

योग की पूर्व सेवा

योग अर्थात् आत्मा को मोक्ष के साथ जोड़नेवाली रत्नत्रयी की आराधना-साधना । योग की प्राप्ति के लिए 'पूर्व सेवा' अनिवार्य है । योग की पूर्व सेवा अर्थात् गुरुदेवादि का पूजन, सदाचार, तप और मुक्ति के प्रति अद्वेष । योग की पूर्व सेवा 'चरमावर्त काल में ही प्राप्त होती है' अचरमावर्त काल में चाहे जितनी बाह्य आराधना-साधना तपश्चर्या हो, उनका कोई मूल्य नहीं है ।

57

परमात्मा पर श्रद्धा जरुरी है :

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 07-08-2019**

इस विराट् विश्व में बाह्यचक्षु से दृश्यमान जितने पदार्थ हैं, उससे भी अनंत गुणें अदृश्यमान पदार्थ हैं ।

हम अपनी आंखों से मर्यादित पदार्थों को ही देख-जान सकते हैं । आंख से एकदम निकट रहे पदार्थ को भी नहीं जान सकते हैं । अपनी आँख पर हम अपनी हथेली लगा दें-तो भी वह हथेली हमें दिखाई नहीं देगी । अत्यंत दूर रही वस्तु को भी हम अपनी आँख से नहीं देख सकते हैं । वस्तु का स्वरूप अत्यंत सूक्ष्म हो तो भी हम अपनी आँख से नहीं देख सकते हैं ।

जितना आँख से दिखाई देता है अथवा जैसा दिखाई देता है-वह भी पूर्ण सत्य नहीं होता है । रेल की दो पटरी के बीच खड़े रहेंगे तो हमें यह भ्रांति होगी कि वे दोनों पटरियाँ परस्पर मिल रही हैं ।

दौड़ती हुई ट्रेन में बैठकर कोई खिड़की से बाहर झाँकता है तो उसे बाहर टेलिफोन के खंभे तथा वृक्ष घूमते हुए नजर आते हैं, जब कि वे सब स्थिर होते हैं ।

पर्वत पर खड़े होकर नीचे देखे तो नीचे खड़े व्यक्ति एकदम बौने नजर आते हैं, जबकि ऐसा नहीं है ।

पंखा अत्यंत तेजी से घूम रहा हो तब उसमें तीन या चार पंखुडियाँ होने पर भी हमें एक भी नजर नहीं आती है । वृक्ष का मूल होने पर भी हमें दिखाई नहीं देती है । हवा का अस्तित्व होने पर भी हमें अपनी आँख से दिखाई नहीं देता है । इससे स्पष्ट है कि दुनिया में जितने सत् (विद्यमान) पदार्थ हैं, उन सबको हम अपनी आँखों से देख नहीं पाते हैं ।

ऐसे अदृश्यमान पदार्थों के अस्तित्व को स्वीकारे बिना छुटकारा नहीं है । अपने पिता व दादा को नहीं देखा हो, ऐसा व्यक्ति भी अन्य के विश्वास पर अपने पिता व दादा के अस्तित्व का स्वीकार करता है । कोई व्यक्ति अमेरिका नहीं गया हो फिर भी अमेरिका से आनेवाले व्यक्ति के कहने से अमेरिका के अस्तित्व का स्वीकार करता है ।

2 + 2 = 4 होते हैं, इस बात को बालक शिक्षक पर के विश्वास के बल पर ही स्वीकार करता है । व्यक्ति टिकिट लेकर तुरन्त बस में बैठ जाता है, उसे ड्राइवर पर श्रद्धा है कि यह गाड़ी मुझे नियत स्थान पर पहुँचाएगी ।

विश्वास के बिना तो जगत् का व्यवहार भी नहीं चलता है । आत्मा, परमात्मा, परलोक, पुण्य, पाप, कर्म, आस्त्रव, निर्जरा, बंध, देवलोक, नरकगति आदि ऐसे अनेक पदार्थ हैं जिन्हें हम बाह्य चर्म-चक्षुओं के द्वारा नहीं जान सकते है । ऐसे पदार्थों की सम्यग् जानकारी हमें अपनी अल्पबुद्धि व चर्मचक्षु से नहीं हो सकती है, अतः इस हेतु जो अतीन्द्रिय पदार्थों के ज्ञाता हैं, उन्हीं के वचन पर विश्वास करना पड़ता है । इस प्रकार पूर्णज्ञानी के वचन पर विश्वास कर अतीन्द्रिय पदार्थों की स्पष्ट व सही जानकारी प्राप्त कर सकते हैं ।

अभिमान

जिस वस्तु की प्राप्ति का हमें अभिमान होता है, भविष्य में वही वस्तु हमारे लिए दुर्लभ बन जाती है । संसार में सानुकूल सामग्री की प्राप्ति पुण्य के उदय से होती है । पुण्य से प्राप्त सामग्री का गर्व करने से अपना पुण्य समाप्त हो जाता है अतः पुण्य से प्राप्त सामग्री का कभी भी अभिमान न करें ।

58 दानी का स्थान सदैव ऊँचा रहता है

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 08-08-2019**

धन की सफलता दान में है । पुण्य के उदय से धन की प्राप्ति होती है, परन्तु जो दान देकर उस धन का सदुपयोग नहीं करता है, उसका धन पापमार्ग में ही जाता है । धन का संग्रह व स्व-उपभोग दोनों पापबंध के कारण हैं, जबकि धन का दान पुण्यबंध का कारण है । शास्त्र में धन की तीन गतियाँ बताई गई हैं, दान, भोग और नाश । धन का श्रेष्ठ उपयोग दान है ।

दान तो मानव जीवन का अलंकार है, अपने पेट की चिंता तो पशु भी करता है और अपने पेट के लिए पशु भी प्रयत्नशील रहता है, जबकि मानव के पास तो बुद्धि है । उस बुद्धि से वह सोच समझ सकता है ।

दान तो मानव जीवन का अलंकार है । मात्र अपना ही विचार करना पशुता है, जबकि दूसरों का विचार करना मानवता है । पशु मात्र अपना ही पेट भर सकता है, परन्तु एक समर्थ मानव, हजारों मानवों व पशुओं का भी पेट भर सकता है ।

इतिहास के पृष्ठों पर उन दानवीरों के नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है, जिन्होंने दिल-खोलकर दान दिया था । कर्ण, जगडूशा, भामाशा आदि के नाम से भला कौन अपरिचित हैं, जो दान धर्म के कारण ही जगमशहूर हुए हैं ।

जगत् को दान धर्म का आदर्श बतलाने के लिए तारक तीर्थंकर परमात्मा दीक्षा अंगीकार करने के पहले गृहस्थ जीवन में 1 वर्ष तक दान करते हैं । वर्ष में वे परमात्मा 388 करोड़ 80 लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान करते हैं । धनाढ्य व्यक्ति भी अपने भव्यत्व का निर्णय करने के लिए तीर्थंकर परमात्मा के वरद हस्तों से दान ग्रहण करते हैं, क्योंकि अभव्य आत्मा तीर्थंकर के हाथों से दान नहीं पा सकती है ।

दानी का स्थान सदैव ऊँचा रहता है । जो हाथ देता है, वह सदैव ऊँचा रहता है और जो लेता है, वह हाथ नीचे रहता है । सागर के पास अपार जल संपत्ति होती है, फिर भी उसका स्थान नीचे है, किंतु बादल छोटे होने पर भी उनका स्थान ऊँचा रहता है, इसका एक मात्र कारण है, बादल हमेशा दूसरों को वर्षा के रुप में पानी देता है और सागर उसका संग्रह करता है ।

पुण्य के उदय से धन की प्राप्ति होती है, परन्तु उस धन के भोग की इच्छा करना भी पाप है । जो पुण्य से प्राप्त धन का सात क्षेत्रों में दान करता है, उसके लिए वह धन पुण्यानुबंधी पुण्य के बंध का कारण बन जाता है ।

जैसे शूरवीर के हाथ में रही तलवार रक्षण का काम करती है और बालक के हाथ में रही तलवार उसी के लिए मौत का कारण बन जाती है ।

इसी प्रकार सामान्य व्यक्ति के हाथ में रहा जहर मौत का कारण बनता है और वैद्य के पास रहा जहर, औषध का काम करता है । बस, इसी प्रकार कृपण के पास रहा धन उसकी दुर्गति का कारण बनता है । जबकि दानवीर के पास रही लक्ष्मी उसकी सद्‌गति का कारण बनती है । अतः धन को तारक बनाना या मारक बनाना, यह आपके ही हाथों में है ।

प्रदर्शन

रत्नों के आभूषण तिजोरी में ही बंद रखे जाते हैं,
परंतु शॉ केस Show Case में उनका
प्रदर्शन नहीं किया जाता है ।
अपने जीवन में हुए सुकृत रत्नों के आभूषण तुल्य हैं
उन्हें गुप्त रखने में ही लाभ है,
उनका प्रदर्शन करने से
उनसे प्राप्त होनेवाला लाभ नष्ट हो जाता है ।

59

सभी जीवों को जीना पसन्द है, मरना नहीं

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 09-08-2019**

दु:खी प्राणियों पर करुणा करना दया है । जिस प्रकार मूल के बिना वृक्ष टिक नहीं सकता है, वैसे ही दया के बिना धर्मरुपी कल्पवृक्ष टिकता नहीं है ।

दया के पालन से ही हम धर्म रूपी वृक्ष में जल का सिंचन कर सकते हैं । दया के अभाव में तप-त्याग आदि सभी अन्य धर्म प्रवृत्तियाँ निरर्थक हैं ।

जैसे हमें जीना पसंद है और मरना पसंद नहीं है, वैसे ही जगत् में रहे सभी जीवों को भी जीना पसंद है । मृत्यु सभी को नापसंद है । सभी प्राणियों की आत्मवत् रक्षा करना, यह हमारा परम धर्म है ।

जगत् में विद्यमान सभी धर्म इस अहिंसा के विषय में एकमत हैं । सभी धर्मों में अन्य प्राणियों की रक्षा करने का ही उपदेश दिया गया है । इस सृष्टि का सनातन नियम है कि, जैसा हम अन्य जीवों को देते हैं, वैसा ही हमें प्राप्त होता है । यदि हम दूसरों को सुख देंगे, तो हमें भी सुख प्राप्त होगा और यदि हम दूसरों को दु:ख देंगे, तो हमें भी दु:ख प्राप्त होगा ।

सुख-दु:ख की संवेदना, ज्ञान एवं चेतना की अपेक्षा जगत् में रही सभी आत्माएँ एक समान हैं । इसलिए किसी प्राणी की हिंसा या वध करके, वास्तव में हम अपना ही वध कर रहे हैं और अन्य जीवों की रक्षा करके हम अपना ही रक्षण कर रहे हैं ।

इससे सिद्ध होता है कि अन्य जीव-रक्षा में आत्म-सुरक्षा है और अन्य जीवों की हिंसा में अपनी आत्मा की हिंसा है । दया से ही हमें सुख प्राप्त होता है और निर्दय आचरण से दु:ख प्राप्त होता है ।

शास्त्रों में भी कहा गया है कि दया रूपी नदी के किनारे अन्य त्याग-तप आदि सभी धर्म हरे-भरे एवं स्वस्थ रह सकते हैं । जैसे नदी के बहने पर उसके किनारे रहे सभी वृक्षों का सिंचन आसानी से हो जाता है । उनके सिंचन का कोई प्रबंध करना नहीं पड़ता है । नदी के सूख जाने पर वे वृक्ष भी स्वतः सूख जाते हैं । वैसे ही दया के चले जाने पर त्याग तप भी निरर्थक हो जाते हैं ।

मानवता के विकास के लिए दयार्द्र हृदय अनिवार्य है । जिसके हृदय में दया नहीं है, जिनका हृदय दुःखी व दीन को देखकर द्रवित नहीं होता है, वास्तव में उनका जीवन निष्फल है ।

भूतकाल में ऐसे अनेक आदर्श एवं महान् पुरुषों के जीवन हमें जानने को मिलते हैं, जिन्होने छोटे-छोटे जीवों को बचाने के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया था ।

परंतु अफसोस ! जो भारत भूमि दयालु शासकों के कारण जगत् में पूज्य थी, उसी पवित्र भारत भूमि में आज हिंसा का तांडव नृत्य खेला जा रहा है ।

इस नश्वर देह के अल्पकालीन श्रृंगार के पीछे, पशुवध का जो रक्त रंजित इतिहास छिपा हुआ है, उसका पर्दाफाश किया जाय तो अवश्य ही दयार्द्र हृदय कंपित हो उठेगा ।

कृत्रिम सौन्दर्य प्रसाधनों के प्रयोग से एक ओर भयंकर जीवहिंसा और दूसरी ओर शारीरिक नुकसान होने पर भी सौन्दर्य प्रसाधनों के प्रयोग में निरंतर वृद्धि होती जा रही है ।

स्वप्राणों का भोग देकर अन्य प्राणियों की रक्षा करना तो दूर रहा परंतु निष्कारण हिंसा को भी नहीं छोड़ा जा रहा है । इसका यही परिणाम है कि ज्यों-ज्यों हिंसा का फैलाव बढा है, त्यों-त्यों जन-जीवन में अशांति और अराजकता ही बढ़ी है ।

60

धर्म ही परम मंगल है

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 10-08-2019**

धर्म के विषय में अनेक मत-मतांतर देखे जाते हैं, परंतु वास्तव में वही धर्म है, जहाँ अहिंसा-संयम और तप है । जिनके जीवन में अहिंसा, संयम और तप का आचरण होता है, उनको स्वर्ग में रहे देवता भी नमस्कार करते हैं ।

धर्म ही परम मंगल है । हम सभी को अपने जीवन के विघ्न एवं कष्टों के निवारण हेतु मंगल की कामना रहती है । किसी भी शुभ कार्य के पहले हम शुभ शकुन एवं मंगल अवश्य करते हैं । परंतु ये सभी तो द्रव्य मंगल हैं, जबकि धर्म तो भाव मंगल है ।

दुर्गति में गिरते प्राणी को जो धारण करता है, वह धर्म है । जिनेश्वर परमात्मा द्वारा बतलाए धर्म का फल अचिन्त्य है । धर्म के समस्त फल का वर्णन करने में कोई समर्थ नहीं है ।

धर्म के प्रभाव से ही सूर्य प्रतिदिन उगता है और जगत् के जीवों को प्रकाश प्रदान करता है । धर्म के प्रभाव से ही रात्रि में चन्द्रमा अंधकार को दूर करता है । सूर्य और चन्द्र नियमित रूप से जगत् के जीवों को सतत प्रकाश देने का जो कार्य कर रहे हैं, यह साक्षात् धर्म का ही प्रभाव है ।

वैशाख और ज्येष्ठ मास में भयंकर गर्मी पड़ती है, उस गर्मी से सभी जीव अत्यन्त सन्तप्त हो जाते हैं । उस गर्मी की भयंकर पीड़ा को दूर करने के लिए मेघराजा बरसता है, उस वर्षा से अत्यन्त सन्तप्त पृथ्वी भी शान्त हो जाती है और उस खुशहाली में हरियाली की हरी चादर ओढ़ लेती है । यह सब धर्म का ही साक्षात् प्रभाव है ।

इतना ही नहीं लवणसमुद्र आदि अपनी मर्यादा त्यागकर जम्बुद्वीप में भयंकर हानि नहीं करते हैं, यह भी धर्म का ही पुण्य प्रभाव है । व्याघ्र

आदि जंगल में रहते हैं, पवन अनुकूल बहता है और महाअनर्थ नहीं करते है तो यह सब धर्म का ही प्रभाव है ।

धर्म के प्रभाव की क्या बात करें ? दुनिया में जो कुछ भी शुभ है, सुख और शान्ति है, वह सब धर्म का ही प्रत्यक्ष प्रभाव है ।

धर्म के प्रभाव से तीन लोक में रहे सभी प्राणी सुख प्राप्त करते हैं । धर्म ही इस लोक और परलोक में सुख देने वाला है, मोक्षसुख प्रदान करने का सामर्थ्य धर्म में रहा हुआ है ।

धर्म से धन मिलता है, धर्म से काम मिलता है, धर्म में दुनिया की समृद्धि देने की ताकत रही हुई है । परन्तु मुमुक्षु आत्मा का कर्तव्य है कि वह धर्म के फलस्वरूप सांसारिक भौतिक-सुखों की झंखना न करे । धर्म के फलस्वरूप इस लोक के सुख की इच्छा करने से वह धर्मानुष्ठान भी विषानुष्ठान बन जाता है । धर्म के प्रभाव से पारलौकिक सुखों की झंखना करने से वह धर्मानुष्ठान-गरलानुष्ठान बन जाता है, जो धीरे-धीरे आत्मा के गुणों का घात करता है ।

परिग्रह

धन का होना परिग्रह और धन का न होना
अपरिग्रह ऐसा एकांत नियम नहीं है,
परंतु मन में धन के प्रति रही आसक्ति
ही वास्तव में परिग्रह है ।
मन में उठनेवाली धन की
इच्छाओं पर नियंत्रण
पाने के लिए ही परिग्रह-परिमाण व्रत है ।
इस व्रत द्वारा मन की इच्छाओं पर नियंत्रण
पाया जा सकता है । ममत्व के बंधन को
तोड़ना ही सच्ची स्वतंत्रता पाने का श्रेष्ठ उपाय है ।

61

श्रद्धा से आते हैं परमात्मा हृदय मंदिर में

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 11-08-2019**

आँखों में जब मुस्कान होती है, तब दुश्मन भी अपने बन जाते है । शरीर में यदि पंखों का सहारा हो तो विराट् आकाश भी हम से दूर नहीं, पास है । वैसे ही यदि हृदय में श्रद्धा, भक्ति और समर्पण का भाव है, तो परमात्मा हमसे दूर नहीं बल्कि हृदय मंदिर में ही हैं ।

वैसे तो परमात्मा ने सभी कर्मों का क्षय कर मोक्ष में स्थान पाया है । वह मोक्ष हमसे खूब दूर है । मोक्ष में गए परमात्मा पुनः संसार में नहीं आते, फिर भी श्रद्धा के द्वारा परमात्मा हमारे हृदयमंदिर में अवश्यमेव आते हैं ।

साक्षात् परमात्मा के दर्शन तो हमारे लिए संभव नहीं है, फिर भी परमात्मा की प्रतिमा हमें उनका परिचय देकर, उनके साथ संबंध जोड़ने के लिए परम साधन है । परमात्मा की प्रतिमा, साक्षात् परमात्मा ही है । परमात्म-प्रतिमा की भक्ति, परमात्म भक्ति का ही फल देने में समर्थ है ।

मात्र प्रतिमा ही नहीं, परमात्मा का नामस्मरण भी खूब उपकारक है । उनका नामस्मरण करने से आत्मा के पाप पलायित हो जाते हैं । उनके नाम-स्मरण से सुख-दुःख में समता भाव की शक्ति प्राप्त होती है ।

परमात्मा के नाम एवं प्रतिमा के साथ, जिन द्रव्यों और जिन क्षेत्रों से परमात्मा का संबंध है, वे भी हमें उनसे संबंध जोड़ने में सहायक बनते हैं ।

जिन क्षेत्रों में परमात्मा के जन्म आदि पाँच कल्याणक हुए हों, जहाँ उनके समवसरण की रचना हुई हो, जहाँ उनके मुख कमल से धर्मदेशना प्रसारित हुई हो, वह क्षेत्र और वहाँ के अणु-परमाणु उनके द्वारा भावित हुए होते हैं । वे अणु-परमाणु हमारे मन में भी शुभ भावों को पैदा करने में सहायक बनते हैं ।

क्षत्रियकुंड महातीर्थ ऐसी भूमि है, जहाँ पर परमात्मा ने अपने गृहस्थ जीवन के 30 वर्ष व्यतीत किये हैं । इसी स्थान पर परमात्मा जब माता के गर्भ में आये थे, तब माता ने अनोखे 14 महास्वप्न देखे थे । इसी स्थान पर परमात्मा महावीर स्वामी का जन्म हुआ एवं बाल्यकाल और गृहवास को व्यतीत करके संसार के सारे संबंधों का त्याग कर, जगत् के सभी जीवों का उद्धार करने एवं आत्मा की पूर्णता को पाने संयम जीवन को स्वीकार किया था ।

यह एक ऐसी तीर्थ भूमि है, जहाँ पर प्रभु महावीर के बड़े भाईराजा नंदिवर्धन ने परमात्मा के जीवित समय में परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन का अनुभव करावे, ऐसी प्रतिमा का निर्माण किया था । वही प्रतिमा आज भी उस स्थान पर विराजमान है ।

जैसे नाव के माध्यम से नदी पार की जा सकती है, वैसे ही परमात्मा की प्रतिमा भवसागर को पार करने में सर्व श्रेष्ठ आलंबन प्रदान करती है । तीर्थभूमि की रज भी हमें परमात्मा की याद दिलाकर उनके समान बनने के लिए प्रबल आलंबन प्रदान करती है ।

दोष का पक्षपात

दोष से भी
दोष का पक्षपात ज्यादा भयंकर है ।
दोष-सेवन के बाद जिसके दिल में
तीव्र पश्चात्ताप का भाव पैदा हो जाता है,
वह भी संसार सागर से पार उतर जाता है ।
दोष का त्याग न कर सके तो
कम से कम दोष का पक्षपात तो
कदापि नहीं होना चाहिए ।

62

कषाय से बढ़ता है हमारा भावी संसार:

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 12-08-2019**

आत्मा के संसार की वृद्धि का कारण क्रोध-मान-माया और लोभ रूप चार कषाय हैं । आत्मा का शुद्ध स्वभाव तो निष्कषाय है, परंतु जीवन जीते हुए व्यक्ति अनेक छोटे-बड़े निमित्तों के कारण क्रोधादि कषायों के वश हो जाता है । ये कषाय आत्मा का अनंत संसार बढ़ाने में कारण बनते हैं ।

क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी चार कषाय भी चार प्रकार के होते हैं । जैसे पानी में रेखा खींचने पर वह क्षण भर भी नहीं रहती है, रेखा खींचने पर तुरंत मिट जाती है, वैसे ही कुछ व्यक्तियों का कषाय पानी की लकीर जैसा होता है जो पैदा होते ही तुरंत खत्म हो जाती है, उसका अस्तित्व नहीं रहता है ।

दूसरा कषाय रेत में खींची रेखा के समान है, जो थोड़ी देर रहती है, परंतु हवा की लहर आने पर मिट जाती है, लम्बे काल तक नहीं रहती है । वैसे ही जो कषाय पैदा होने के बाद थोड़े समय तक रहते है, परंतु थोड़ा समय बीतने पर स्वतः ही अपनी भूल का पश्चात्ताप कर पुनः क्षमाभाव पैदा कर देता है ।

तीसरा कषाय तालाब की रेखा के समान है । जैसे गर्मी के दिनों में सूर्य की किरणों से पानी का शोषण हो जाता है और तालाब की भूमि में तिराडें-अनेक रेखाएँ पैदा हो जाती हैं । परंतु जैसे ही वर्षा का पानी गिरता है, वे तिराडों की रेखाएँ स्वतः मिट जाती हैं । तालाब की रेखा के समान जो कषाय थोड़े अधिक दिनों तक टिकता है, मन के भीतर क्षमाभाव पैदा नहीं होने देता, परंतु कुछ अधिक समय बीतने पर भूल का पश्चात्ताप हो जाता है ।

चौथे प्रकार का कषाय पर्वत की रेखा के समान है । पर्वत की रेखा कभी जुड़ती नहीं है, वैसे ही चौथे प्रकार का कषाय जीवन-भर में कभी नहीं मिटता और जन्म जन्मांतर तक आत्मा को संसार में परिभ्रमण कराता है ।

इन चारों प्रकार के कषायों में चौथा कषाय अत्यंत ही भयंकर है । आत्मा के सारे गुणों का नाश करके आत्मा की खूब विडंबना कराता है ।

दुनिया जैसे के साथ तैसा व्यवहार करना सिखाती है । किसी ने हमारे साथ अच्छा व्यवहार किया हो तो हम उससे अच्छा व्यवहार करते हैं और किसी ने हमारे साथ बुरा व्यवहार किया हो तो हम उसके साथ बुरा व्यवहार करते हैं । उपकारी के साथ उपकार भाव और अपकारी के साथ अपकार का भाव तो हर कोई रखता है । जबकि धर्म हमें क्षमाभाव को आत्मसात् करने की बात सिखाता है ।

उपकारी के साथ तो उपकार भाव रखना ही है, जबकि अपकारी के साथ भी उपकार भाव ही रखना, हमें धर्म यह सिखाता है ।

अपना अपकार करने वाला डाकिये की तरह है । जैसे डाकिया हमें अपना खत देता है, उसमें लिखे बुरे समाचार तो खत भेजनेवाले के हैं । वैसे ही हमपर होनेवाले अपकार के कार्य हमारे पूर्व-कृत कर्मों के कारण प्राप्त हो रहे हैं । अपकार करने वाला तो हमें उस कर्म का क्षय कराने में सहायक होने से वह भी उपकार करने वाला ही है ।

तर्क से सिद्ध होनेवाली इस बात को हमारा मन स्वीकार नहीं करता है । यदि मन इस बात को स्वीकार कर ले, तो अनंत काल से आत्मा के भीतर रहे कु-संस्कार नष्ट हो सकते है ।

63

त्याग से भी वैराग्य कठिन है

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 13-08-2019**

त्याग नहीं, कठिन है वैराग्य भाव । वैराग्य भाव के अभाव में चाहे कितना भी त्याग हो, उसकी कोई कीमत नहीं है । भीतर में विरक्ति का भाव हो तो छह खंड के साम्राज्य को भी छोड़ना अत्यंत आसान है ।

नश्वर और शाश्वत की भेद रेखा जब हमें समझ में आती है, तब आत्मा के भीतर वैराग्य की प्राप्ति होती है ।

यह सारा जगत् नश्वर है । चाहे रूप हो या यौवन, धन या वैभव, सब कुछ क्षण-विनश्वर है । फिर भी इन्हें शाश्वत मानकर इनसे लगाव करते हैं । इनके प्रति रहा लगाव ही हमें इनसे होनेवाली विडंबना से मुक्ति नहीं देता है । कदाचित् कोई त्याग कर दे, तो भी भीतर का लगाव, मन को वहीं पर केन्द्रित करता है और त्याग का वास्तविक भाव हमें प्राप्त नहीं होता है ।

विरक्त आत्मा को ये सारा संसार बंधन रूप लगता है । जैसे पिंजरे में रहे पोपट को सारी सुविधाएँ प्राप्त होने पर भी उसे पिंजरा कैद स्वरूप लगता है । उसकी सबसे बड़ी और प्रबल इच्छा मुक्त होने की होती है ।

जिसके मन में संसार से विरक्ति का भाव और मोक्ष के शाश्वत सुख की चाहना हो उसे यह पूरा संसार बंधन रूप लगता है । चाहे दिव्य सुख हो, कितने ही महामूल्यवान मनुष्य जन्म के भौतिक सुख हों, ये सब अतितुच्छ एवं बंधन रूप लगते हैं ।

जब तक आत्मा को मोह का जहर चढा होता है, तब तक आत्मा के भीतर वैराग्य का दीप प्रकट नहीं होता है ।

साँप का जहर बड़ा भयंकर होता है । साँप के काटने से या तो व्यक्ति मूर्च्छित हो जाता है अथवा मर जाता है । तीव्र विष हो तो वह

मौत का ही कारण बनता है । यदि मौत न हो तो भी उस जहर के प्रभाव से व्यक्ति मूर्च्छित हो जाता है ।

साँप के जहर से भी भयंकर है मोह का जहर । साँप का जहर एक ही जीवन का अंत लाता है, जब कि मोह का जहर, जन्मजन्मों तक आत्मा को परेशान करता रहता है ।

साँप के जहर को उतारने के लिए गारुड़िक की जरूरत होती है । गारुड़िक मिलने पर साँप का जहर उतर जाता है, वैसे ही मोह का जहर उतारने के लिए अरिहंत की आज्ञा ही परम गारुड़िक है ।

अरिहंत की आज्ञा में मोह के भयंकर जहर को उतारने की प्रचंड ताकत है । अनादि काल से मोह की तीव्र पराधीनता के कारण मोह का विष आत्मा में इतना अधिक व्याप्त हो गया है कि उस जहर को उतारना आसान बात नहीं है ।

निरंतर अप्रमत्त भाव से अत्यंत ही आदर-बहुमान पूर्वक अरिहंत की आज्ञा का भाव से स्वीकार व पालन किया जाय, तो ही आत्मा मोह के जहर से सदा के लिए मुक्त बन सकती है ।

सच्चा साधक

साधक आत्मा, दुसरों की प्रवृत्ति में अंध,
बधिर व मूक होती है । अर्थात्–
दूसरों के दोष देखने में जो अंध है,
दूसरों की निंदा सुनने में जो बधिर है और
दूसरों के दोष कहने में जो मूक है,
वही सच्चा साधक है ।
पौद्गलिक पदार्थों में जुड़े मन को हटाकर
आत्मा के स्वरुप के साथ मन को जोड़ने से
ही सच्ची साधना संभव है ।

64 गुणों के विकास से ही धर्मी बन सकते है

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 14-08-2019**

हर चमकती धातु-सोना नहीं होती है, हर चिकना पदार्थ शुद्ध घी नहीं होता है, वैसे ही धर्मक्रिया करनेवाला सच्चा धर्मी नहीं होता । सच्चा धर्मी बनने के लिए उसके योग्य गुणों को धारण करना जरुरी होता है । गुणों के बिना मात्र धर्म या धर्मी का लेबल लगाने से हर नामधारी धर्मी-सच्चा धर्मी नहीं बनता है ।

आत्मा के भीतर सच्चा धर्म तभी आ सकता है, जब उसके योग्य गुण आत्मा में पैदा हों । समता, संवेग, निर्वेद, आस्तिकता और अनुकंपा के गुणों से ही हम अपनी आत्मा के विकास का स्तर ऊँचा कर सकते हैं ।

धर्म का प्रवेश होने पर जीवन में से क्रोधादि कषाय शांत हो जाते हैं । उसे किसी के प्रति शत्रुता का भाव नहीं रहता । वह किसी के अहित का विचार नहीं करता । किसी प्रसंग पर क्रोधादि कषाय उत्तेजित हो जाए, तो भी उसके असर को खतम करने का प्रयत्न करता है । उसके मन में किसी के प्रति वैर की गाँठ नहीं रहती है । उसके मन में सभी जीवों के प्रति आत्मतुल्यता का भाव रहता है ।

समता भाव का मुख्य कारण आत्मा के शाश्वत सुख को पाने की लगन है । सदा काल के लिए परम सुखी आत्मा मात्र मोक्ष में ही है, बाकी चाहे देवलोक के सुख भी क्यों न हो, वे एक दिन अवश्य पूर्ण हो जाते हैं । नश्वर सुख से भरे संसार का त्याग करके शाश्वत सुख को पाने हेतु उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति मोक्ष लक्ष्यी होती है ।

जब मोक्ष का सुख प्रिय लगता है, तब संसार का सुख अप्रिय लगता है । दुःख तो सभी को अप्रिय है । परंतु सुख और सुख के साधन वास्तव में तो दुःख ही हैं । संसार का सारा सुख भी ज्ञानी भगवंतों की नजर में जहर के लड्डू के समान है । जैसे जहर के लड्डू खाने से स्वाद

आता है और क्षुधा तृप्ति भी होती है, परंतु परिणाम तो मौत है । वैसे ही संसार के सभी सुख प्रारंभ में मीठे लगते हैं, परंतु वे अपार पापबंध के कारण भविष्य में अत्यंत ही दुःखदायी हैं । अतः धर्मी व्यक्ति पाप के कारणस्वरूप संसार के सुखों को छोड़ने के लिए प्रयत्नशील होता है ।

संसार की इस सत्यता को जानने पर उसे इस सत्य को बताने वाले जिनेश्वर भगवान के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा पैदा होती है । देव और गुरु की भक्ति-वैयावच्च करने में वह शक्य प्रयत्न करता है ।

मात्र परमात्मा को मानना पर्याप्त नहीं है, बल्कि परमात्मा के वचनों को मानने का प्रयत्न करना चाहिए । भगवान के सभी वचनों की सत्यता को तर्क से भी समझना चाहिए । यदि तर्क से सिद्ध पदार्थ हमें समझ ना आए, तो भी परमात्मा पर विश्वास करके उनके वचनों पर पूर्ण श्रद्धा करनी चाहिए ।

जिन्हें परमात्मा से प्रेम होता है उसे विश्व के प्राणी मात्र से प्रेम और मैत्रीभाव स्थापित करना चाहिए ।

जैसे सूर्य के आगे बर्फ पिघलता है, उसी प्रकार धर्मी का दिल, दुःखी के दुःख को देखकर पिघल जाता है । उसे अन्य का दुःख देखा नहीं जाता, इतना ही नहीं बल्कि अपनी शक्ति से उसका दुःख दूर करने का प्रयत्न करता है ।

धर्मी के इन गुणों को जानकर हमें इन गुणों को आत्मसात् करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

विजेता

इच्छाओं को जीतनेवाला सच्चा विजेता है, जबकि
इच्छाओं से हारनेवाला गुलाम ही है ।
आज मानव इच्छाओं पर विजय पाने के बजाय
उसके अधीन बनता रहा है, जो इच्छाओं का गुलाम हैं,
उसे हम सुखी कैसे कह सकते है ?

65 भीतर के अंधकार को दूर करना जरूरी है

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 15-08-2019**

इस जगत् में यदि तीर्थंकर परमात्मा का अस्तित्व नहीं होता तो धर्म शासन की स्थापना नहीं होती और धर्मशासन के अभाव में आत्मा का मोक्ष भी नहीं होता ।

बाहर के अंधकार से भी ज्यादा खतरनाक है, भीतर का अंधकार । बाहर का अंधकार तो दीपक के प्रकाश से दूर हो जाता है, परंतु आत्मा के भीतर रहे अंधकार को दूर करना अति मुश्किल है । उसे दूर करने के लिए धर्मशासन खूब जरूरी है ।

धर्मशासन के अभाव में मोक्ष-मार्ग नहीं होता और मोक्षमार्ग के अभाव में आत्मा कर्मों के बंधनों से मुक्त नहीं हो सकती ।

भूतकाल, जो बीत चुका है, उसका विचार किया जाय, तो पता चलेगा कि आज तक अनंत काल बीत चुका है, फिर भी आश्चर्य है कि अभी तक अपनी आत्मा, कर्मों के बंधनों से मुक्त नहीं हुई है ।

अनंत काल से अपनी आत्मा इस अपार संसार की चार गतियों में, चौरासी लाख जीवयोनियों में भटक रही है । कभी यह देव बनती है, तो कभी भिखारी । कभी सत्ताधीश बन कर पूरी दुनिया पर राज्य करती है, तो कभी दाने-दाने के लिए तरस कर जीवन का अंत लाती है ।

हमारी आत्मा कभी बुद्धिमान बनकर दुनिया में मान-सम्मान पाती है, तो कभी पागल बनकर सर्वत्र घृणा-तिरस्कार-अपमान सहन करती है । कभी घोड़े पर सवार बनी तो कभी स्वयं ही सवारी के साधनभूत घोड़ा-ऊँट आदि बनी और अत्यंत यातनाओं को अनिच्छा से सहन किया । नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेकर इस आत्मा ने इतने अधिक अपमान-अनादर-तिरस्कार व यातनाएँ सहन की हैं कि जिनका कोई हिसाब नहीं है । आखिर प्रश्न खड़ा होता हैं—आत्मा को यह सजा क्यों ?

इसकी सजा का एक ही कारण है-वह सतत ऐसी ही प्रवृत्ति कर

रही है कि जिससे कर्म का बंध हो, कर्म का बंध करने पर आत्मा को उस कर्म की सजा भुगतनी पड़ती है ।

कोर्ट में धन का लालच देकर सच्चे को झूठ व झूठ को सच्चा कर न्याय को अपने पक्ष में कर लेनेवाले व्यक्ति को भी कर्म का न्याय स्वीकार करना पड़ता है ।

कर्म को किसी की शर्म नहीं है । वह राजा व चक्रवर्ती को भी फटकारते हुए नहीं घबराता है...अरे यावत् चरम शरीरी आत्माएँ, जो उसी भव में मोक्ष में जानेवाली हों या तीर्थंकर की आत्मा हो, जो अपने अंतिम भव में एकदम निर्दोष हो, फिर भी उन आत्माओं ने अपने पूर्व भवों में कोई भूल की हो तो उस भूल की सजा उन्हें भी भुगतनी पड़ती है ।

सच मायने में आत्मा के इस संसार-परिभ्रमण की जड़ है-मिथ्यात्व अर्थात् बुद्धि का विपर्यास । इस तीव्र मिथ्यात्व के उदय के कारण आत्मा को इस संसार के बंधन में से मुक्त होने की इच्छा ही नहीं होती है । उसे तो इस भयंकर दुःखमय संसार में भी यदा-कदा जो क्षणिक व तुच्छ सुख मिल जाता है, उसी को पाकर वह तृप्त हो जाती है । उस क्षणिक सुख को पाने के कारण उसे यह संसार दुःखरूप लगता ही नहीं है ।

पुण्य के उदय से जो सुख मिलते हैं, उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति की जा सकती है, जब कि मोक्ष का सुख तो परोक्ष है, अतः उसे मोक्षसुख को पाने की कल्पना ही नहीं होती है ।

राग का त्याग

कंचुकी के त्याग से साँप, विषमुक्त नहीं बन जाता है ।
जहर तो उसकी दाढ़ों में होता है । उसी प्रकार मात्र भोगों
के त्याग से कोई त्यागी नहीं बन जाता है । त्यागी बनने
के लिए भोगों के राग का त्याग जरुरी है
क्योंकि भोग जितने खतरनाक नहीं हैं,
उससे भी खतरनाक उन भोगों के प्रति रहा राग भाव है ।

66

चिंता छोड़ो-सुख से जीओ

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 16-08-2019**

मानव मन की समस्त इच्छाओं का संशोधन किया जाय तो ज्ञात होगा कि हर मानव के मन में सुख को पाने की और दु:ख से मुक्त होने की इच्छा रही है ।

जिस प्रकार समुद्र में तरंगें पैदा होती रहती हैं, उसी प्रकार मानवीय मन में इच्छाएँ पैदा होती रहती हैं, परन्तु उन सब इच्छाओं को हम मात्र दो इच्छाओं में समाविष्ट कर सकते हैं ।

मानव मात्र सुख को पाना चाहता है और दु:खों से मुक्त होना चाहता है । मानवीय मन के भीतर ये दो इच्छाएँ प्रबल होने पर भी आश्चर्य है कि सच्चे सुख से मानव कोसों दूर रहा हुआ है और वह सतत अनेक प्रकार के Tentions टेंशनों से घिरा हुआ दिखाई देता है ।

एक Tention से मुक्त होते ही वह दूसरे Tention से घिर जाता है । आज मानव भाग रहा है और चिंताएँ उसका पीछा नहीं छोड़ रही हैं । वैज्ञानिक संशोधनों के कारण आज मानव छोटी-बड़ी अनेक बीमारियों पर नियंत्रण पा चुका है, परन्तु आश्चर्य है कि उसकी मानसिक बीमारियाँ बढ़ती जा रही हैं ।

अमेरिका समृद्ध देश कहलाता है, वहाँ भौतिक संपत्ति और समृद्धि की कमी नहीं है । अनेक प्रकार की भौतिक सुविधाएँ उनके पास हैं, परन्तु आश्चर्य है कि उन्हें A/c. Bedroom में भी शांति से नींद नहीं आती है । 50% अमेरिकन लोगों को रात्रि में सोने के पूर्व नींद की गोली खानी पड़ती है । वे इन गोलियों के इतने अधिक आदी हो गए हैं कि अब नींद की गोली भी उन्हें असर नहीं करती है । जबकि यहाँ आपको प्रवचन सुनते-सुनते ही आराम से नींद आ जाती है ।

दु:ख के दो प्रकार : इष्टवियोग, जो व्यक्ति या वस्तु मन को पसंद हो उस व्यक्ति या वस्तु का वियोग हो जाता है तो व्यक्ति दु:खी

हो जाता है । पिता की मृत्यु से पुत्र दुःखी होता है । पुत्र की मृत्यु से माता-पिता दुःखी होते हैं । पति की मृत्यु से पत्नी और पत्नी की मृत्यु से पति दुःखी होता है । भाई की मृत्यु से भाई, बहिन की मृत्यु से बहिन भाई दुःखी होते हैं ।

प्रिय वस्तु, मकान, जमीन, जायदाद, पैसा-सोना-चांदी, आभूषण, कीमती वस्त्र तथा अन्य किसी वस्तु की चोरी हो जाय ! ये वस्तुएँ जल जायें, पानी में गल जायें, किसी प्राकृतिक आपदा के कारण नष्ट हो जायें तो व्यक्ति दुःखी हो जाता है ।

अनिष्ट का संयोग : जो व्यक्ति या वस्तु मन को बिल्कुल पसंद न हो, ऐसा व्यक्ति या वस्तु मिल जाय तो भी व्यक्ति दुःखी हो जाता है ।

आशा असली रुपये की हो और नकली रुपये हाथ में आ जायें तो व्यक्ति दुःखी हो जाता है । शारीरिक बीमारी किसी को पसंद नहीं है, अतः शरीर में कोई बीमारी आ जाय तो व्यक्ति दुःखी हो जाता है ।

बुढ़ापा पसंद नहीं है । बुढ़ापे के कारण सभी इन्द्रियाँ कमजोर हो जाती हैं अतः उन्हें देख व्यक्ति दुःखी हो जाता है ।

कुत्ते का भोंकना या गधे का रेंकना मन को पसंद नहीं पड़ता है । कुष्ठ रोग से ग्रस्त व्यक्ति को देखते ही मन में घृणा पैदा हो जाती है ।

समाधि

भोजन को पचाने के लिए भूख जरूरी है । भूख बिना भोजन पचता नहीं है । जीवन में आनेवाले दुःखों को पचाने का पाचक चूर्ण 'अदीन भाव' है । जीवन में आए सुखों को पचाने का पाचक चूर्ण 'अलीन भाव' है । सुख-दुःख को पचाने का पाचकचूर्ण यदि आपके पास है तो समाधि आपके हाथ में है, अन्यथा समाधि कोसों दूर है ।

67

पाप का मुख्य कारण है, धन का लोभ

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 17-08-2019**

साँप से डरने वाले तो लाखों हैं, परंतु पाप से डरने वाले बहुत कम हैं । धन का संग्रह सभी पापों का मुख्य कारण है, फिर भी धन का संपूर्ण त्याग सभी के लिए शक्य नहीं है ।

धन के संपूर्ण त्याग के लिए वीतराग परमात्मा ने साधु-धर्म बताया है । साधु जीवन संपूर्ण निष्पाप जीवन है । जैन साधु के पास अपनी मालिकी का एक मकान भी नहीं होता । फिर भी वे अपना जीवन सुखमय व्यतीत कर सकते हैं, क्योंकि उनके मन में कल की कोई चिंता नहीं है । परमात्मा ने भिक्षाचर्या द्वारा उनके जीवननिर्वाह की वृत्ति बताई है अतः संपूर्ण रूप से धन का त्याग होने पर भी वे परम सुखी हैं ।

जो धन का संपूर्ण त्याग न कर सके, उनके लिए वीतराग परमात्मा ने श्रावकजीवन बताया है । श्रावक का जीवन धन के बिना व्यतीत नहीं हो सकता, इसलिए श्रावक को अपने जीवन में धन पर लगाम रखनी चाहिए ।

आज पूरी दुनिया धनवान एवं उद्योगपति को बड़ा इन्सान मानती है । जबकि ज्ञानियों की नजर में वो सबसे अधिक दया पात्र है । जीवन में जैसे-जैसे धन की प्राप्ति होती है वैसे-वैसे जीवन में लोभ बढता है । धन को पाने के लिए व्यक्ति कौन-सा पाप नहीं करता है ? मन में रही पैसे की भूख को पूरी करने के लिए व्यक्ति हर पाप का आचरण करने के लिए तैयार हो जाता है ।

पेट की भूख थोड़ी सामग्री से पूरी हो सकती है, जबकि धन की भूख चाहे जितना धन मिल जाए, उसकी पूर्ति नहीं होती ।

धन की प्राप्ति के लिए हिंसा, झूठ और चोरी के पाप करने पडते हैं । आजाद भारत में दूध और घी की नदियाँ बहने की कल्पना

अनेक देशभक्तों ने की थी, परंतु दूध और घी की नदियाँ तो दूर रही, पानी की नदियाँ भी सूख गई हैं और खून की नदियाँ बह रही हैं । बड़े उद्योगों एवं कारखानों के पीछे हजारों-लाखों जीवों की करुण हिंसा रही हुई है । कारखानों का जहरीला पानी तालाबों, नदियों और समुद्र में जाता है, और उसमें रहे हजारों जलचर प्राणियों की बेमौत मृत्यु हो जाती है ।

गृहस्थ को जीवन जीने के लिए धन की आवश्यकता जरुरी है, परंतु धन जीवन का कुछ अंश जरूर है, सब कुछ नहीं है । भिखारी तो मंदिर के बाहर 100-200 रुपयों की भीख माँगता है, जबकि लोभी व्यक्ति मंदिर में जाकर भगवान के पास करोड़ों की भीख माँगता है ।

संपत्ति आने के बाद जीवन में सुख बढ़ेगा, यही मान्यता है, जबकि संपत्ति आने के बाद जीवन में से सुख चला जाता है । जैसे आकाश का कोई अंत नहीं है, वैसे ही धन की इच्छाओं का कोई अंत नहीं है । दुनिया मानती है कि इच्छापूर्ति से सुख होगा, जबकि वीतराग परमात्मा कहते हैं–इच्छापूर्ति नहीं बल्कि इच्छामुक्ति से परम सुख होगा ।

सभी प्रकार के धन के आगे संतोष का धन सबसे बडा है । जिसके जीवन में संतोष धन है, उसके जीवन में परम सुख है ।

जिसके जीवन में संतोष है, उसे ही जीवन में शांति, मरण में समाधि, परलोक में सद्‌गति और परंपरा से मोक्ष की प्राप्ति हो सकेगी ।

महासती सीताजी की सुरक्षा लक्ष्मण रेखा में थी, वैसे ही जीवन में शांति और सुख की सुरक्षा रखनी है, तो हमारे जीवन में अर्थार्जन की लक्ष्मण रेखा जरूरी है ।

वर्तमान में सभी धनवानों को प्राप्त हुई सारी संपत्ति का उपभोग पापकार्य में ही अधिक मात्रा में होता है । पहले जवानी के जोश में पैसा कमाने के लिए आरोग्य को खो देता है, और जब पैसा आ जाता है, तब आरोग्य पाने के लिए पैसा खोने का प्रयत्न करता है ।

पैसों से दवाई खरीद सकते हैं, आरोग्य नहीं । मित्र खरीद सकते हैं, मैत्री नहीं, चश्मे खरीद सकते हैं, आँखें नहीं । पैसा मात्र सुख के साधन दे सकता है परंतु सुख की प्राप्ति तो मात्र धर्म से ही हो सकती है ।

जीवन में धन के बढने से संस्कारों का नाश हुआ है । पैसा यह जीवन जीने का साधन है, उसे साध्य बनाकर हमें हमारा जीवन बरबाद नहीं करना चाहिए ।

नीतिशास्त्र के अनुसार अन्याय-अनीति का धन 10 वर्षों से ज्यादा नहीं रहता है और जब वह जाता है, तब मूल धन का भी नाश कर देता है ।

जीवननिर्वाह के लिए जितना धन चाहिए, उसकी मर्यादा बांधकर अन्य धन-वैभव का धर्मकार्य में उपयोग करके धर्माराधना में ज्यादा समय बिताना चाहिए ।

स्त्री सम्मान

तीन गुणों से स्त्री सर्वत्र सम्मान प्राप्त करती है ।

(1) सहनशीलता-कष्टों को प्रसन्नतापूर्वक सहन करना ।

(2) शील-मन, वचन और काया से परपुरुष से दूर रहना ।

(3) उदारता-संकुचित मनोवृत्ति का अभाव ।

इन तीन गुणों के अभाव में स्त्री चाहे कितनी ही सुंदर क्यों न हो, ज्ञानियों की दृष्टि में उसके सौंदर्य की कोई कीमत नहीं है ।

68

श्रावक के लिए सामायिक की आराधना

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 18-08-2019**

संपूर्ण निष्पाप जीवन तो एक मात्र साधु जीवन है, परंतु गृहस्थ जीवन में कदम-कदम पर हिंसा, झूठ, चोरी आदि के पाप आचरण करने पड़ते हैं । गृहस्थ अपना जीवन निर्वाह करने के लिए प्रतिदिन असंख्य एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा करता है । फिर भी गृहस्थ जीवन में साधु जीवन के आस्वाद स्वरूप सामायिक और पौषध की आराधना कर सकता है । सामायिक के माध्यम से श्रावक भी अल्प काल के लिए सभी पापों का त्याग कर सकता है ।

सामायिक और पौषध में श्रावक साधुवत् जीवन जीता है । इसलिए कहा है कि गृहस्थ जीवन में श्रावक को अधिक समय सामायिक आदि व्रत नियम में व्यतीत होता है, वह समय सफल मानना चाहिए, शेष समय तो संसार के परिभ्रमण का ही वर्धक है । इसलिए श्रावक को बार-बार सामायिक करनी चाहिए ।

सामायिक में मन-वचन और काया की पवित्रता रहती है । इसलिए सामायिक में सात्त्विकता के प्रतीक रूप श्वेत सूती वस्त्र धारण किया जाता है ।

शरीर पर पहने हुए वस्त्र, शरीर को तो प्रभावित करते ही हैं, साथ में मन को भी प्रभावित करते है । मन को बाँधने के लिए शरीर की स्थिरता और एक आसनबद्धता चाहिए तो साथ में वस्त्रों की सादगी भी चाहिए ।

सामायिक दरम्यान अपने मन को केन्द्रित करने के लिए श्री नमस्कार महामंत्र या अन्य किसी तीर्थंकर परमात्मा संबंधी मंत्र का जाप किया जा सकता है ।

जाप में एक ही पद का पुनः पुनः उच्चारण किया जाता है । जाप करते समय अपना मुँह पूर्व या उत्तर दिशा सम्मुख होना चाहिये ।

जाप के लिए श्वेत सूत की माला या पंचवर्णी सूत की माला या स्फटिक की माला का प्रयोग कर सकते हैं, परन्तु प्लास्टिक की माला से जाप नहीं करना चाहिये ।

जाप करते समय पद्मासन, अर्द्धपद्मासन या सुखासन में बैठ सकते हैं । जाप करते समय अपनी रीढ़ की हड्डी सीधी रहनी चाहियें, जिससे अप्रमत्त रहकर जाप हो सकेगा । जाप करते समय अत्यंत झुककर नहीं बैठना चाहिये । झुककर बैठने से निद्रा सवार हो जाती है । जाप दरम्यान अपने दाहिने हाथ में माला रहनी चाहिए ।

अपनी चार अंगुली के ऊपर अर्थात् तर्जनी और अंगूठे के बीच माला रहनी चाहिये और मुट्ठी आधी बंद रखनी चाहिये । माला भी धार्मिक उपकरण होने से उसे पैर नहीं लगना चाहिये । माला अपनी छाती से चार अंगुल दूर और नाभि से ऊपर रखनी चाहिये ।

जाप करते समय आँखे बंद रख सकते हैं अथवा अपनी दृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर स्थिर कर सकते हैं ।

सचित्त-भक्षण

**सचित्त वस्तु का भक्षण कामवासना को उत्तेजित करता है,
इसी कारण हर तप-साधना में सचित्त के
भक्षण का सर्वथा निषेध है ।
विगइयों का सेवन भी मन में विकार
भाव पैदा करता है, अतः ब्रह्मचारी-साधक
को जहाँ तक हो सके विगइयों का त्याग
करना चाहिए । कदाचित् करना पड़े तो भी
अल्प विगई का सेवन करे या नीवियाते का सेवन करे ।**

69

14400 आयंबिल के तपस्वी थे आचार्य श्री राजतिलकसूरिजी

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 19-08-2019**

पाचन तंत्र कमजोर होने पर, खायी हुई पौष्टिक सामग्री भी शक्तिदायक नहीं बनती है, बल्कि शरीर में रोग पैदा करती है, उसी प्रकार हृदय में शुद्ध भाव न होने पर किया हुआ तप और त्याग भी मन के भीतर क्रोध आदि कषाय पैदा करते हैं । तप करने पर भी मन में क्रोध आदि कषाय उत्तेजित होते हों तो वह तप का पाचन नहीं बल्कि अजीर्ण ही है ।

तप वही सच्चा है, जिस तप से आत्मा और शरीर का भेद ज्ञान हो । जिसमें मन-वचन और काया से ब्रह्मचर्य का पालन हो । शरीर और इन्द्रियों के विषयों से मुक्त होने के लिए मन-वचन और काया से जिनेश्वर परमात्मा की भक्ति हो । मन-वचन और काया का परमात्मा के साथ संबंध जुड़े और आत्मा के भीतर रहे क्रोधादि कषाय का उपशमन हो ।

तप से शरीर का संबंध छूटता है और परमात्मा के जप से प्रभु के साथ संबंध जुड़ता है ।

तप धर्म की विशुद्ध आराधना एवं जैन शासन की प्रभावना करते हुए अपने जीवन को सफल किया था पूज्य आचार्य श्रीमद् विजय राजतिलकसूरीश्वरजी म.सा. ने ।

गुजरात राष्ट्र के भावनगर जिले के चलोड़ा गांव में उनका जन्म हुआ था । गृहस्थ जीवन में उनका नाम रतिलाल था । मात्र 18 वर्ष की युवा वय में **पूज्य आचार्य श्री प्रेमसूरीश्वरजी म.सा.** के समागम एवं पूज्य आचार्यश्री रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. के वैराग्य भरे प्रवचनों से उनके मन में वैराग्य का दीप प्रज्वलित हुआ था ।

संयम जीवन के स्वीकार के बाद वैसे तो उनके लिए आयंबिल का तप अत्यंत ही कठिन था । फिर भी गुरुदेवश्री की पावन प्रेरणा एवं आशीर्वाद से उन्होने वर्धमान तप का प्रारंभ किया । वर्धमान तप पूर्ण करने में 5150 दिन होते हैं, जिसमें एक आयंबिल और एक उपवास से बढ़ते हुए 100 आयंबिल और एक उपवास करने होते हैं । इस प्रकार यह तप 5050 आयंबिल और 100 उपवास से पूरा होता है ।

आयंबिल तप को आत्मसात् करके पूज्य आचार्यश्री राजतिलकसूरिजी ने 2 बार वर्धमान तप पूर्ण कर तीसरी बार 79 ओलियाँ पूर्ण की थीं । इस तरह उन्होंने अपने जीवन में 14400 से भी अधिक आयंबिल करके तप धर्म का आदर्श उपस्थित किया था ।

वर्तमान दुनिया **''खाओ-पीओ और मजा करो''** की बात करती है, जबकि धर्म को प्राप्त साधु महात्मा आत्मसाधना में तप और त्याग की झड़ी लगाते हैं । तप और त्याग के ऐसे आदर्शों को जानकर हमें भी अपने जीवन में तप का लक्ष्य रखकर आत्मसाधना में लीन बनना चाहिए ।

परिग्रह का भार

यात्रा Travelling दरम्यान
कम सामान साथ में हो तो यात्रा सुखद रहती है ।
बस, इसी प्रकार परलोक की यात्रा
के लिए भी हल्का रहना जरुरी है ।
जो परिग्रह के भार से भारी
होता है, वह डूबता है अर्थात् अधोगति में
जाता है, और जो परिग्रह के भार से
हल्का होता है, वह ऊपर उठता है
अर्थात् देवगति प्राप्त करता है ।

70 दीपक के समान स्व-पर प्रकाशक है ज्ञान

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 20-08-2019**

ज्ञान-दीपक के समान स्व और पर का प्रकाशक है । जैसे दीपक के अस्तित्व में अंधकार का नाश हो जाता है, उसके पास रही वस्तुएं भी आसानी से देख सकते है, तो दीपक को देखने के लिए अन्य दीपक की आवश्यकता नहीं रहती है । वही दीपक अपने आपको एवं पास में रही वस्तु को भी प्रकाशित करता है ।

वैसे ही ज्ञान भी आत्मिक गुण होने से वह आत्मा के भीतर रहे अज्ञान के अंधकार को दूर करता है । ज्ञानी धर्मोपदेश से अन्य आत्मा में रहे अज्ञान के अंधकार का नाश होता है और उनमें भी ज्ञान दीपक का प्रकाश फैलता है ।

तीर्थंकर परमात्मा संयम जीवन का स्वीकार कर, कठोर धर्मसाधना के बल पर, सभी कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं । तीर्थंकर नाम कर्म स्वरूप पुण्य के उदय से देवता आकर समवसरण की रचना करते हैं । वहाँ सुवर्ण सिंहासन पर बैठकर परमात्मा प्रतिदिन दो-दो प्रहर तक अर्थ के माध्यम से धर्म देशना देते हैं । उस अर्थ की धर्मदेशना को गणधर भगवंत सूत्र के रूप में रचना करते हैं । आचार्य भगवंत गणधर भगवंतों द्वारा रचित आगम ग्रंथ के आधार पर ही जैन शासन का संचालन करते हैं ।

वैसे तो ज्ञान के पाँच प्रकार हैं जिसमें मतिज्ञान इन्द्रिय और मन के माध्यम से आत्मा को बोध कराने वाला है । अवधिज्ञान, मनः पर्यवज्ञान और केवलज्ञान तो आत्मप्रत्यक्ष हैं । इन चार ज्ञान का मात्र आत्म-अनुभव हो सकता है, जबकि आत्म-अनुभव से बोला और सुना जा सकता है, वह मात्र श्रुत ज्ञान है । मात्र श्रुत ज्ञान का ही आदान-प्रदान होने से शासन का संचालन श्रुतज्ञान से ही होता है ।

परमात्मा की धर्मदेशना से गणधर भगवंतों ने बारह अंग की

रचना की । उसके बाद हुए अनेक महापुरुषों ने अनेक प्रकरण ग्रंथ रचे, जो आंशिक प्रमाण में 45 आगम स्वरूप श्रुतज्ञान आज भी हमें प्राप्त है । 11 अंग, 12 उपांग, 10 पयन्ना, 6 छेद सूत्र, 4 मूलसूत्र, अनुयोग द्वार एवं नंदिसूत्र आदि इन 45 आगमों के आधार पर परमात्मा का शासन सुदीर्घ काल तक चलेगा ।

श्रुतज्ञान की प्राप्ति के लिए हमें श्रुतज्ञान, श्रुतज्ञान के साधन एवं श्रुतज्ञानी के प्रति विनय-विवेक और बहुमान भाव रखना चाहिए । जब तक इनके प्रति विनय और बहुमान भाव नहीं आता है, तब तक आत्मा के भीतर ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता, बल्कि अधिक अज्ञान ही फैलता है ।

प्रत्येक अक्षर भी ज्ञान का साधन है । इन अक्षरों के द्वारा हमें ज्ञान प्राप्त होता है । अतः अक्षरों पर पैर रखना, अक्षर लिखे कपडों को पहनने, कागज में भोजन करने, या कागज से मल-मूत्र की सफाई करने से ज्ञानावरणीय कर्म का बंध होता है ।

इस कर्म के फल स्वरूप जीवात्मा को संसार में अंधत्व, विकलांगता आदि दुःखों की प्राप्ति होती है । दुःखों से बचने एवं आत्मिक ज्ञान को पाने ज्ञान, ज्ञानी और ज्ञान के साधनों की आशातना से बचकर उनकी अधिकाधिक भक्ति करनी चाहिए ।

भावों की पुष्टि

मोक्ष और मौत को हमेशा याद करो ।
मोक्ष की स्मृति से संवेग भाव की पुष्टि होगी और
मौत की स्मृति से निर्वेद भाव की
पुष्टि होगी । संवेग और निर्वेद भाव के
स्पर्श बिना आत्मा में सम्यक्त्व के
परिणामों का स्पर्श नहीं हो पाता है ।
सम्यक्त्व के अभाव में की गई
आराधना विशेष फलदायी नहीं होती है ।

71

रसना-विजय का श्रेष्ठ उपाय है तप धर्म

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 21-08-2019**

युद्ध के मैदान में शस्त्रों के माध्यम से अनेक शत्रुओं को परास्त करके विजय प्राप्त करना तो खूब आसान है, परन्तु आत्मा के भीतर रहे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना अत्यंत ही कठिन है ।

हमें प्राप्त हुई पाँच इन्द्रियाँ, तेज दौडने वाले घोड़े से भी अति चंचल एवं चंपल हैं । इन पर विजय पाना खूब कठिन है । इन पाँचों इन्द्रियों में सबसे अधिक बलवान जीभ है, जो अन्य सभी चारों इन्द्रियों का पोषण करती है । शेष चारों इन्द्रियों पर काबू पाना आसान है परंतु जीभ पर विजय पाना खूब मुश्किल है । यह जीभ मुख के अंदर रहती है, जिसे 32 चौकीदार एवं दो कपाट रूप होठ हैं, फिर भी इसके वश रहने पर हमें जीवन में खूब-खूब कष्ट सहन करने पड़ते हैं ।

इस रसना पर विजय पाने के लिए सर्व श्रेष्ठ उपाय तप है । तप के द्वारा आत्मा के भीतर रहे कठिन पाप कर्मों का क्षय होता है । तप से नये पाप कर्म अटक जाते हैं और पूर्व काल में उपार्जित पाप कर्मों का क्षय होता है ।

इन्द्रियों में जीभ, आठ कर्मों में मोहनीय कर्म, व्रतों में ब्रह्मचर्य एवं गुप्तियों में मन पर विजय पाना खूब मुश्किल है ।

सभी कर्मों में मोहनीय कर्म सबसे अधिक बलवान है । इसके विजय से आत्मा वीतराग बनकर मुक्ति प्राप्त करती है । मोहनीय कर्म हमें परमात्मा के द्वारा बताए सच्चे धर्म पर श्रद्धा पैदा होने नहीं देता है । आत्मा को भ्रमित करके दीर्घ काल तक संसार में बाँधे रखने का मुख्य कार्य मोहनीय कर्म करता है ।

इसी प्रकार जीवन में अनेक छोटे-बड़े व्रतनियम का पालन भी आसान है, परंतु ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कठिन है । जैसे चित्र चाहे

कितना भी सुंदर क्यों न हो, उस पर स्याही गिर जाने पर उस चित्र की कला नष्ट हो जाती है । वैसे ही ब्रह्मचर्य व्रत के भंग से सभी त्याग-नियम और संयम व्यर्थ हो जाते हैं ।

मन-वचन और काया के योगों में मन को जीतना सबसे अधिक कठिन है । जिसने मन को जीत लिया, वो ही सच्चा विजेता होता है । छह खंड का राजा भी मन से हार जाता है, तो सब कुछ हार जाता है ।

रसना, मोहनीय कर्म, ब्रह्मचर्य व्रत और मन पर विजय पाने के लिए पूर्व के महापुरुषों का अनुकरण करने के समान तप धर्म में आगे बढ़ना चाहिए ।

कृतज्ञ बनें

जिसने हम पर उपकार किया हो
उसे कभी न भूलें,
उपकारी के उपकार स्मरण को
कृतज्ञता कहते हैं ।
जिसने हम पर विश्वास रखा हो,
उसका कभी भी घात न करें
कृतघ्न और विश्वासघाती तो
इस पृथ्वी पर भारभूत ही हैं ।
अनेक अनेक व्यक्तियों के उपकार
के तले दबकर ही हम इस संसार
में आगे बढ़ पाए हैं, अतः कभी
कृतज्ञता गुण को न भूलें ।

72

दर्प और कंदर्प आत्मा के बड़े शत्रु हैं

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 22-08-2019**

आत्मा के दो बड़े शत्रु हैं - दर्प और कंदर्प । दर्प यानी अभिमान और कंदर्प यानी कामवासना । भारत देश की भूमि पर महाभारत और रामायण के दो बड़े युद्ध हुए, उनका मुख्य कारण ये दर्प और कंदर्प है ।

सत्ता के अभिमान के कारण कौरव और पांडव के बीच महाभारत का युद्ध लड़ा गया । तो रावण राजा के अंत:पुर में 16000 रूपवती स्त्रियाँ थी एवं मंदोदरी जैसी मुख्य पट्टरानी थी । फिर भी सीता के मोह के कारण राम-रावण के युद्ध में रावण को सब कुछ हार जाना पड़ा ।

समुद्र में चाहे कितनी भी नदियाँ मिल जायें, वह समुद्र कभी तृप्त नहीं होता है । श्मशान भूमि में चाहे जितने मुर्दे जलाए जाएँ, वह भूमि कभी तृप्त नहीं होती । अग्नि में चाहे जितना ईंधन डाला जाए, अग्नि कभी ईंधन से तृप्त नहीं होती है ।

उसी प्रकार पाँच इन्द्रियों के विषय-भोगों से मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता है । हमें लगता है कि हम पांच इन्द्रियों के विषयों का भोग करते हैं, जबकि वास्तव मे ये विषय भोग हमारे शरीर और आत्मा की सात्त्विकता का शोषण करते हैं । शरीर शक्तिहीन बन जाता है और आत्मा कर्मों के मल से मैली बन जाती है ।

पाँच इन्द्रियों के विषयभोग हमें प्रारंभ में मीठे लगते हैं परंतु अंत में अत्यंत ही दारुण हैं । इन्द्रियों के भोग में और शरीर के क्षणिक सुख के लिए हम आत्मा के शाश्वत सुख को भूल जाते हैं । आत्मा को भूलकर हम मात्र शरीर केन्द्रित जीवन जीते हैं ।

लकड़ा कितना ही मजबूत क्यों न हो, परन्तु जब उसमें दीमक लग जाती है, तब वह लकड़ा धीरे-धीरे अंदर से खोखला होने लगता

है । खोखला बना वह लकड़ा बाहर से सुंदर लगता है, परन्तु अंदर से तो कमजोर हो जाता है ।

मनुष्य को प्राप्त ये पाँच इन्द्रियाँ भी घुण के कीड़े की तरह होती हैं, जो साधु के चारित्र को अंदर से कुतरने का काम करती हैं ।

आत्महित के लिए सम्यग्दर्शन पाना हो अथवा आत्मविकास के लिए देशविरति या सर्वविरति धर्म की आराधना करनी हो, उसके लिए इन्द्रियजय खूब जरुरी है । जो इन्द्रियों का गुलाम है वह सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर पाता है तो देशविरति या सर्वविरति धर्म की तो क्या बात करें ।

सद्धर्म की प्राप्ति हेतु इन्द्रियजय खूब जरुरी है । जो इन्द्रियों के अधीन बना, वह चारित्र से भी भ्रष्ट बनता है । इतिहास इस बात का साक्षी है कि आज तक जिन-जिन त्यागी-तपस्वी और संयमी आत्माओं का जो अधःपतन हुआ है, उसमें मुख्यतया इन्द्रियों की आसक्ति ही प्रधान रही है । इन्द्रियों की आसक्ति ने अच्छे-अच्छे महात्माओं का भी अधःपतन करा दिया है, अतः पूरे प्रयत्न के साथ इन्द्रियजय के लिए अपना प्रयत्न होना चाहिए ।

सुख की परीक्षा

आदमी हर चीज की परीक्षा करता है ।
नकली छोड़कर असली पसंद करता है,
जब कि आश्चर्य है कि सुख के विषय में
गुमराह हो जाता है,
आत्मिक और आध्यात्मिक
वास्तविक सुख के बजाय वह शारीरिक और भौतिक,
नाशवंत और क्षणिक सुख को ही सच्चा सुख मान
लेता है और उसी को पाने के लिए
प्रयत्नशील रहता है ।

73

दृष्टिदोष से मुक्त बनें ।

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 23-08-2019**

जवानी में दृष्टिदोष और बुढ़ापे में दोषदृष्टि । मानव को देखने के लिए जन्म से दो आँखें मिली हैं । जन्म के समय मानव-शिशु की आँखों में कितनी कोमलता, निर्मलता और पवित्रता होती है । बालक सबको प्यारा लगता है, क्योंकि उसका हृदय साफ है । उसकी आँखें निर्विकार हैं । उसके नेत्रों में दोषदृष्टि की मलिनता नहीं है ।

परन्तु वही शिशु जब धीरे-धीरे बड़ा होता है, तब उसकी आँखें धीरे-धीरे अंतरंग रोग-ग्रस्त बनती जाती हैं । हाँ ! सभी मनुष्यों को आँख के ये रोग लागू पड़ जाते हैं, ऐसी बात नहीं है । जो बचपन से सावधान हैं, वे इन रोगों से बच जाते हैं और जो असावधान हैं, वे रोग-ग्रस्त बन जाते हैं ।

मानवशिशु जब यौवन के प्रांगण में प्रवेश करता है, तब उसकी आँखों में धीरे-धीरे एक रोग बढता है और वह है-दृष्टिदोष । जो आँखें पहले पवित्र थीं, निर्विकार थीं, उन आँखों में अब दृष्टिदोष की बदबू आने लगती है । समय रहते इस रोग का इलाज न किया जाय तो धीरे-धीरे रोग बढ़ता जाता है और वह युवक इस रोग से बुरी तरह से ग्रस्त हो जाता है ।

वह रात और दिन इस रोग से पीड़ित हो जाता है । वह जहाँ भी जाएगा उसकी आँखें स्त्री के रूपदर्शन की प्यासी बनेगी । उसे इस रूपदर्शन से लेश भी तृप्ति नहीं होगी, फिर भी उसकी आँखें उसका पान करती रहती हैं ।

दृष्टिदोष से घायल व्यक्ति मल-मूत्र और हाड़-मांस से भरपूर स्त्री की देहलता में नाना प्रकार की कल्पनाएँ करता है । वह उसके मुख को चन्द्र की उपमा देता है तो कभी कमल की ।

काम का प्रवेशद्वार आँख है । वह आँख के द्वार से प्रवेश करता है और सीधा मन पर हमला करता है ।

मन यदि परास्त हो गया तो उसकी जीत हो जाती है और वह व्यक्ति को अपना गुलाम बना देता है ।

दृष्टिदोष के पाप से ही रूपसेन का पतन हुआ था । महाभारत और रामायण के भयंकर युद्धों के पीछे भी पर-स्त्री की आसक्ति ही मुख्य कारण थी ।

वर्तमान युवा पीढ़ी में दृष्टि दोष का पाप इतना अधिक व्यापक हो गया है कि इसका इलाज कठिन हो गया है ।

जिसने अपने यौवन को बेदाग प्रसार कर दिया उसने अपने जीवन में वास्तविक सफलता हासिल की है ।

युवावस्था में दृष्टि दोष के पाप से बचने का अवश्य प्रयास करना चाहिए । इस दोष के नाश से युवक अपने भविष्य को उज्ज्वल बना सकता है ।

युवावस्था का सबसे भयंकर दुर्गुण दृष्टिदोष है तो वृद्धावस्था का सबसे भयंकर दुर्गुण दोषदृष्टि है । वय की परिपक्वता के साथ आँखें धीरे-धीरे कमजोर होने लगती हैं । वृद्धावस्था में **'दोषदृष्टि'** का रोग अधिक प्रबल हो जाता है और वह व्यक्ति हर व्यक्ति में भूलें देखता रहता है ।

आग को शांत करने की ताकत पानी में है । आग में जैसे जलाने की शक्ति है तो पानी में उस आग को शांत करने की ताकत है ।

आग और पानी की लड़ाई में आखिर विजय पानी की ही होती है । दोषदृष्टि वाले को सर्वत्र दोष ही दिखाई देते है ।

इस पाप से बचने के लिए अपने जीवन में गुण दृष्टि को विकसित करना चाहिए ।

74

क्रोध की आग, जीवन बाग को भस्म करती है

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 25-08-2019**

क्रोध हमारे जीवन का सबसे बड़ा शत्रु है । वह आग की तरह हमारे जीवन में आत्मसात् किये सद्गुणों का नाश कर देता है ।

वैसे तो आग जीवनोपयोगी भी है, मटके को पकाने के लिए कुम्हार को आग की जरुरत रहती है, क्योंकि कच्चे घड़े में पानी भरा नहीं जा सकता है । सोने की शुद्धि और परीक्षा के लिए भी अग्नि का ही उपयोग होता है ।

शरीर को टिकाने के लिए भोजन की जरूरत रहती है । अग्नि के बिना भोजन पकाया नहीं जा सकता । भोजन लेने के बाद भी पेट में रही जठराग्नि से ही उस भोजन का पाचन होता है । अतः अग्नि के बिना जीवन निर्वाह नहीं होता ।

बाहर की अग्नि तो हमारे लिए जीवनोपयोगी है, जबकि दिमाग की गर्मी हमारे जीवन में आग लगा देती है । सबसे ज्यादा खतरनाक है क्रोध की आग, जिसके जलने से जीवन खाक हो जाता है और जीवन में शून्यावकाश छा जाता है ।

एक छोटे तबेले में 500 सिंगवाली भैसें शांति से जीवन बिता सकती हैं परंतु राजमहल जैसे बड़े मकान में 5 व्यक्ति शांति से जीवन नहीं जी सकते हैं ।

छोटे बच्चे के झगड़े तो खाने-पीने की बातों में होते हैं, परंतु वे सुबह झगड़ते हैं और शाम तक शांत हो जाते हैं । जबकि बड़े लोगों के झगड़ों का मुख्य कारण-धन, सत्ता और स्त्री है, जिनके पीछे बड़े-बड़े युद्ध हुए हैं ।

सामान्यतया हमारे झगडें पास में रहे लोगों के साथ होते है । जड़ पदार्थों के प्रेम के कारण जीवात्मा के प्रति द्वेष करना बड़ी मुर्खता है, फिर भी धन-संपत्ति का अधिकार पाने के लिए भाई-भाई, पिता-पुत्र

आदि निकट के संबंधी भी कोर्ट में केस लड़कर जीवन भर लडते हैं । जिससे जन्म-जन्मों का वैर हो जाता है ।

आँख में गिरा एक तिनका भी हमें विचलित कर देता है, पैर में लगा एक काँटा हमारी गति में रुकावट डाल देता है, वैसे ही किसी एक जीव के प्रति मन के भीतर रही वैर की गाँठ हमारी आत्मसाधना को रोक देती है । किसी एक जीव के प्रति रहा वैर भाव, जिस पाप कर्म का अर्जन करता है, वह पाप अनेक दान, शील या तप से भी क्षय नहीं होता है, वह तो क्षमापना से ही नष्ट होता है ।

किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद सभी लोग उसके मुर्दे का संग्रह नहीं करते हैं । कुछ लोग जला देते हैं, तो कुछ लोग जमीन में गाड़ देते हैं । वैसे ही वैर भाव के मुर्दे को हमारे हृदय में सँभालकर नहीं रखना चाहिए । बल्कि क्षमा के द्वारा उसे नष्ट कर देना चाहिए । अन्य सारी क्रियाओं से भी क्षमा भाव धारण करना सबसे बड़ा धर्म है ।

हमें अपने स्वयं के जीवन में क्षमा भाव रखना चाहिए । आने वाली हर तकलीफ मात्र हमारे पाप-कर्मों के कारण है, अतः तकलीफ देने वालों को अपकारी नहीं बल्कि पापकर्म के नाश में सहायक होने से उपकारी मानना चाहिए । हमने किसी का अपमान किया हो तो उससे क्षमा माँगनी चाहिए एवं कोई हम से क्षमा मांगे तो उनके अपराधों को माफ करना चाहिए ।

क्रोध का मुख्य कारण है, अपेक्षाओं का भंग । किसी के प्रति रही अपेक्षा का जब भंग होता है, तब मन में क्रोध भाव पैदा होता है जो जीवन का आनंद नष्ट कर देता है । जीवन में प्रयत्न करने पर भी जब निष्फलता प्राप्त होती है, तब उससे जुड़े सभी लोगों पर द्वेष और क्रोध पैदा होता है । जीवन में हमें हमारे विचारों को बदलना चाहिए । जब विचार बदलते है तब मन के भीतर शुभ भाव पैदा होते हैं । एक शुभ भाव अनेक शुभ भावों को पैदा करता है, जो आगे बढ़कर सर्वकर्म से मुक्ति प्रदान कर मोक्ष देने में समर्थ है ।

क्षणिक पदार्थों के प्रेम के पीछे मोक्ष के शाश्वत सुखों को छोड़ना हमारी मुर्खता है । अतः क्षणिक पदार्थों के प्रेम को छोड़कर शाश्वत के प्रेम के प्रति जागृत होकर क्रोधादि कषायों का त्याग करना चाहिए ।

75

शुद्ध धर्म की आराधना मात्र मनुष्य ही कर सकता है

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 26-08-2019**

पर्युषण महापर्व के प्रारंभ के साथ ही हमारे जीवन में धर्म आराधना की वृद्धि का लक्ष्य होना चाहिए । वैसे तो पूरा मनुष्य जीवन, धर्म आराधना की सीजन है । धर्म की विशुद्ध आराधना मनुष्य जन्म में ही शक्य है ।

चार गति के जीवों में देव गति में अत्यंत भौतिक सुख है, नरक गति में अत्यंत दुःख है एवं पशु गति में अत्यंत भूख है । धर्म में बाधक समान अत्यंत सुख, दुःख एवं भूख के कारण देव, नारक एवं पशु अपने जीवन में धर्म आराधना नहीं कर सकते हैं । धर्म की आराधना मात्र मनुष्य जीवन में सुलभ है । क्योंकि सोचने के लिए तीक्ष्ण बुद्धि और मन के साथ पाँच इन्द्रियों की परिपूर्णता मनुष्यों को ही प्राप्त हैं ।

हमें प्राप्त मनुष्यजन्म अति कीमती है । अमावस्या की घोर अंधेरी रात में बिजली के प्रकाश में सूई के छिद्र में धागा पिरोने जितनी कठिन है, मनुष्यजन्म में धर्म आराधना । मनुष्य जीवन पाकर भी भोगविलास, सांसारिक जिम्मेदारी आदि कारणों से मनुष्य धर्म-आराधना से वंचित रह जाता है ।

प्रतिदिन धर्म-आराधना न कर सकें, उन सद्गृहस्थों के लिए हर तीसरे दिन पर्वतिथियाँ बताई हैं । हर महीने में विशेष पर्व भी बताए हैं । ये पर्व हमें आत्मोन्नत्ति का संदेश देने आते हैं । जैन धर्म के पर्व आत्मा को पावन करने, त्याग-तप एवं धर्म साधना का संदेश देते है ।

अन्य पर्वों की अपेक्षा पर्युषण महापर्व अति महत्वपूर्ण है, क्योंकि पर्युषण महापर्व की आराधना से हमारे कर्म के मर्म पर घात होता है । जिस प्रकार शरीर के मर्मस्थल पर घात होने पर व्यक्ति जीवित नहीं

रहता है, उसी प्रकार पर्युषण में संसार के मुख्य कारणभूत मोहनीय कर्म पर घात होता है ।

पर्युषण पर्व के माध्यम से हमें हमारे भीतर रहे वैर का विसर्जन करना है । वैर के विसर्जन के बिना आत्मिक विकास नहीं हो सकता हैं ।

पर्व के दिनों में शक्ति हो तो पौषध व्रत का स्वीकार करके साधुवत् जीवन जीना चाहिए । वह शक्य न हो तो ब्रह्मचर्य का विशुद्ध पालन, आरंभ समारंभ का त्याग, विशेष तपश्चर्या, परमात्म-भक्ति, साधर्मिक वात्सल्य, सुपात्र दान आदि कर्तव्यों का पालन करना चाहिए ।

पर्युषण महापर्व के निमित्त विशेष रुप से अहिंसा की उद्घोषणा, साधर्मिक वात्सल्य, पारस्परिक क्षमापना, अट्ठम तप एवं चैत्य परिपाटी स्वरुप पांच कर्तव्यों का विशेष रूप से पालन करना चाहिए ।

आर्द्र भूमि में ही बीज का वपन हो सकता है, उसी प्रकार जिसका हृदय करुणार्द्र बना हो वही व्यक्ति सद्धर्म की सच्ची आराधना कर सकता है । जिसके हृदय में दया नहीं है, ऐसे निर्दय और कठोर हृदय में धर्म बीज का वपन संभव नहीं है ।

जीना सबको प्यारा है, परंतु आज मनुष्य इतना स्वार्थी बन गया है, कि उसे अपने भोग विलास के आगे किसी के दुःख की फिकर नहीं रही । कहते है कि अहिंसा के बल पर भारत देश आजाद हुआ । आज उसी भारत देश में बड़ी निर्दयता से प्रतिदिन लाखों प्राणियों की कत्ल हो रही है । मात्र सौन्दर्य के नाम पर अनेक वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए लाखों मूक पशुओं पर निर्दयता से अत्याचार किये जाते हैं । आज अनेक माताएँ अपनी संतानों का गर्भपात कराकर मनुष्य हत्या के पाप में जुड़ी हैं ।

हमारे आस-पास होने वाली पशुओं की करुण मौत से हमारा मन धर्म में स्थिर नहीं रहता है । अतः जहाँ तक हमारी शक्ति पहुँच सकती हो, वहाँ तक हमें पशुओं की हत्या पर प्रतिबंध कराकर अहिंसा का प्रवर्तन कराना चाहिए ।

900 वर्ष पहले हो चुके राजा कुमारपाल ने अपने 18 देशों में अहिंसा का पालन करवाया था । अकबर बादशाह ने भी आचार्य श्री हीरसूरिजी के सद्उपदेश से हिंसा पर प्रतिबंध लगाया था ।

धर्म आराधना में सहायक बनने वाले समान धर्मी श्रावक श्राविका भी हमारे परम उपकारी हैं । हमें अपने साधर्मिकों के प्रति वात्सल्य भाव से उनकी भक्ति करनी चाहिए ।

जीवन में अन्य संबंधियों का संग सहज हो सकता है परंतु साधर्मिक का संग मुश्किल है । तराजू के एक पलड़े में अन्य धर्म रखे जाएँ और एक ओर मात्र साधर्मिक भक्ति धर्म रखा जाए तो भी साधर्मिक भक्ति का पलड़ा भारी हो जाता है ।

अतः जीवों के प्रति दया के साथ साधर्मिक के प्रति वात्सल्य का भाव धारण करना चाहिए ।

ब्रह्मचर्य

तंबाकू के खेत को बाड़ नहीं होती है,
परंतु खेत में अनाज बोया जाय
तो बाड़ जरुरी हो जाती है ।
जो वस्तु जितनी कीमती होती है,
उसकी सुरक्षा का प्रबंध उतना ही
ज्यादा किया जाता है ।
पाँच महाव्रतों में चौथा ब्रह्मचर्य महाव्रत
सबसे ज्यादा कीमती है,
अतः उसके रक्षण के
लिए सबसे ज्यादा नियमों का
पालन करना होता है । ब्रह्मचर्य के रक्षण के लिए
महापुरुषों ने नौ बाड़ बताई है ।

76

विवेक चक्षु के अभाव में क्रोधी भी अंधा है

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 27-08-2019**

आत्मा का मूल स्वभाव है शांत-प्रशांत रहना, परंतु क्रोध के कारण आत्मा अपने स्वभाव से चलित होकर विभाव में चली जाती है, जिसकी आग, आत्मा की समस्त साधना को भस्म कर देती है ।

जैसे पानी का मूल स्वभाव शीतलता प्रदान करना है, परंतु जब पानी में अग्नि के परमाणु प्रवेश करते हैं तब गर्म पानी शीतलता के बदले जलाने का काम करता है ।

वैसे ही तप और त्याग से आत्मा का ऊर्ध्वगमन होता है, परंतु जब तप-त्याग का अजीर्ण होता है, तब क्रोध का आवेश बढ़ जाता है । क्रोध में अंध बने व्यक्ति के विवेक चक्षु बंद हो जाते हैं । विवेक चक्षु के बिना बाह्य चक्षु भले चाहे कितने ही तेजस्वी क्यों न हों, ज्ञानियों की नजर में वह अंध ही है ।

अपने अभिमान पर चोट, इच्छाओं की अपूर्ति एवं निष्फलता के कारण भी क्रोध पैदा होता है । इन कारणों से पैदा हुआ क्रोध व्यक्ति को हत्या और आत्महत्या करने के लिए भी मजबूर कर देता है । क्रोध के आवेश में व्यक्ति बिना सोचे कुछ भी बकवास करने लगता है और अपने माता-पिता आदि वडिल जनों का भी अपमान कर देता है ।

क्रोध के कारण आत्मा अपनी सद्गति को हार जाती है । वर्षो तक निष्पाप संयम जीवन का पालन करने वाला भी क्रोध के वश होकर अपनी साधना को हार जाता है ।

क्रोध की आग से बचने के लिए अपनी भूल देखनी चाहिए । सामान्यतया हर प्रसंग में हम अन्य का ही दोष देखते हैं और अपने ही गुण देखते हैं । इसी कारण हम अपने क्षमा भाव को हार जाते हैं ।

क्रोध के प्रसंगों में क्षमाभाव रखना खूब कठिन है, परंतु प्रयत्न और पुरुषार्थ से क्षमाभाव में स्थिर हो सकते हैं ।

पर्युषण के पाँच कर्तव्यों में पारस्परिक क्षमापना का भाव सबसे अधिक कीमती है । जो अपने वैरी के साथ क्षमाभाव धारण कर माफी माँगता है और अन्य को माफ कर देता है, वही धर्म की सच्ची आराधना कर सकता है ।

क्षमाभाव के बिना त्याग-तप की कीमत नहीं है । अहिंसा की उद्घोषणा, साधर्मिक वात्सल्य, पारस्परिक क्षमापना के साथ अट्ठम तप और चैत्य परिपाटी के कर्तव्यों का भी पालन इन पर्युषण महापर्व के दिनो में करना चाहिए ।

वर्ष भर में हुए पापों की शुद्धि के लिए अट्ठम तप के स्वरुप तीन उपवास अथवा 6 आयंबिल, 12 एकासना, 24 बियासना अथवा 6000 गाथाओं का स्वाध्याय करना चाहिए तथा गाँव में रहे अधिक-से-अधिक जिनमंदिरों के दर्शन करने चाहिए ।

परमात्मा के दर्शन से हमें हमारी आत्मा में रहे परमात्मस्वरूप का ज्ञान होता है । अतः अधिक-से-अधिक जिन मंदिरों में जाकर बहुमान भाव से परमात्मा के दर्शन करने चाहिए ।

भूलें कहाँ दिखती हैं ?

जहाँ स्वार्थ युक्त संबंध होगा,
वहाँ भूलें ही दिखेगी,
परंतु जहाँ समर्पण युक्त संबंध होगा
वहाँ भूलों के दर्शन शक्य नहीं हैं ।
शिष्य का गुरु से संबंध समर्पण युक्त होता है ।
अतः शिष्य को हमेशा अपने उपकारी गुरु के
गुण ही दिखाई देते हैं, दोष कदापि नहीं !

77

तीर्थंकर भी श्रीसंघ को वंदन करते हैं

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 28-08-2019**

श्रावक-जीवन के अलंकार स्वरूप प्रत्येक श्रावक को प्रतिवर्ष वार्षिक ग्यारह कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए । इन कर्त्तव्यों में संघ पूजा प्रथम कर्तव्य है । संघ यानी साधु-साध्वी-श्रावक और श्राविका, जो धर्म की आराधना में तत्पर होकर आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर हैं । जैसे तीर्थंकर वंदनीय और पूजनीय हैं, वैसे ही उनके द्वारा स्थापित संघ भी वंदनीय और पूजनीय है ।

स्वयं तीर्थंकर परमात्मा भी समवसरण में बैठते समय **'नमो तित्थस्स'** कहकर श्री संघ को नमस्कार करते हैं । अतः हमें भी शक्ति अनुसार श्रीसंघ की पूजा-भक्ति करनी चाहिए ।

दूसरा कर्त्तव्य साधर्मिक भक्ति है । साधर्मिक अर्थात् जो समान व्रत नियमों का पालन करते हैं शक्तिसंपन्न श्रावकों को आर्थिक स्थिति से कमजोर श्रावकों की भक्ति करनी चाहिए ।

तीसरा कर्तव्य है यात्रा त्रिक । तीन प्रकार की यात्रा में अष्टाह्निका यात्रा, रथयात्रा और तीर्थयात्रा के कर्त्तव्य हैं । परमात्मा की भक्ति स्वरूप आठ दिनों का महोत्सव करना, अष्टाह्निका यात्रा है । भव्यातिभव्य रथयात्रा का आयोजन एवं छ'री पालन पूर्वक तीर्थयात्रा का आयोजन करना चाहिए ।

तीर्थयात्रा करते समय निम्न छ'री का पालन अवश्य करना चाहिए ।

1) पादचारी :– गुरु भगवन्त के साथ पैदल चलना ।

2) भूसंथारी :– यात्रा दरम्यान रात्रि में संथारे पर सोना चाहिए ।

3) एकल आहारी :– यात्रा दरम्यान कम-से-कम एकासने का पच्चक्खाण करना चाहिए ।

4) सचित्त परिहारी :– यात्रा दरम्यान सचित्त जल, फल आदि का त्याग करना चाहिए ।

5) आवश्यकारी :– यात्रा दरम्यान सुबह-शाम प्रतिक्रमण करना चाहिए ।

6) ब्रह्मचारी :– मन वचन और काया से विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ।

तीर्थ यात्रा से आत्मा के भवभ्रमण की यात्रा का अंत होता है । अतः आशातनाओं को टालकर तीर्थो की यात्रा अवश्य करनी चाहिए ।

4 स्नात्र महोत्सव :– जिसमें परमात्मा के जन्म के बाद होने वाले जन्माभिषेक का शक्ति अनुसार अनुकरण करना चाहिए ।

5 देवद्रव्य की वृद्धि :– धन की मूर्च्छा को तोड़ने के लिए देवद्रव्य की वृद्धि में अपने धन का सद्व्यय करना चाहिए ।

6 महापूजा :– परमात्मा के मंदिर को सुंदर रूप से सजाना चाहिए, जिससे अधिक संख्या में लोग परमात्मा के दर्शन कर पापों का प्रक्षालन कर सकें ।

7 रात्रि जागरण :– रात्रि में परमात्मा की भक्ति-जाप और ध्यान के द्वारा परमात्मा के नाम में तल्लीन रहना चाहिए ।

8 श्रुत की भक्ति :– धर्म का आधार श्रुत ज्ञान है । श्रुत का आलेखन करना, पुस्तकें छपाकर धर्म का प्रचार करना चाहिए ।

9 उद्यापन :– तप की पूर्णाहूति के बाद दर्शन ज्ञान और चारित्र के उपकरणों का प्रदर्शन कर उन्हें चतुर्विध संघ की भक्ति में उपयोग करना चाहिए ।

10 शासन प्रभावना :– श्रावक को ऐसे शुभ कार्य करने चाहिए जिससे श्रीसंघ और शासन की प्रभावना हो ।

11 भव आलोचना :– जीवन में अथवा वर्ष भर के पापों की शुद्धि करने के लिए सद्गुरु भगवंत के सामने उन पापों को स्वीकार करना चाहिए ।

78

श्री कल्पसूत्र का एक-एक शब्द महामंगलकारी है

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 29-08-2019**

24 वें अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के मुख से त्रिपदी सुनकर गणधर भगवंत द्वादशांगी रचना की रचना करते है । द्वादशांगी के ज्ञाता श्री भद्रबाहुस्वामीजी द्वारा रचित श्री कल्पसूत्र ग्रंथ । उस सूत्र पर उपाध्याय श्री विनयविजयजी द्वारा रचित सुबोधिका टीका के आधार पर प्रवचन होते हैं ।

इस ग्रंथ का एक-एक शब्द मंगलकारी है । इस सूत्र में साधु जीवन के योग्य दस आचारों का वर्णन है ! यह ग्रंथ साक्षात् कल्पवृक्ष के समान है, जिसमें महावीर स्वामी का जीवन चरित्र बीज स्वरूप है, श्री पार्श्वनाथ स्वामी का जीवन चरित्र अंकुर समान है, श्री नेमिनाथ भगवान का जीवन-चरित्र स्कंध समान है, श्री ऋषभदेव स्वामी का जीवन-चरित्र डाली के समान है, पूर्व महापुरुषों के जीवन-चरित्र स्वरुप सामाचारी पुष्प की सुगंध के समान है ।

जिस प्रकार देवों में इन्द्र, ताराओं में चन्द्र, न्याय प्रवीणों में राम, रुपवान में कामदेव, वाद्ययंत्रो में भंभा, हाथियों में ऐरावण, साहसिकों में रावण, बुद्धिमानों में अभयकुमार, तीर्थों में शत्रुंजय, गुणों में विनय, धनुर्धरो में अर्जुन, मंत्रों में नवकार, वृक्षों में आम्रवृक्ष, यंत्रों में सिद्धचक्र, दान में अभयदान, नियमों में संतोष, तप में समता सर्वोत्तम है, उसी प्रकार पर्व में पर्युषण पर्व और शास्त्रों में कल्पसूत्र शास्त्र सर्वोत्तम हैं । विधिपूर्वक कल्पसूत्र के श्रवण से एवं पठन में सहाय करने वाला अल्प काल में मोक्ष प्राप्त करता है ।

79

तीर्थंकरों की माताएँ 14 महास्वप्नों को देखती हैं

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 30-08-2019**

तीर्थंकर परमात्मा का जब माता के गर्भ में आगमन होता है, परमात्मा की माता, 14 महास्वप्न देखती है। ये सभी स्वप्न महामंगलकारी एवं प्रशंसनीय होते हैं ।

महा अर्थवाले इन चौदह स्वप्नों में प्रथम स्वप्न में चार दाँतवाला हाथी, दान, शील, तप, भाव रूप चार धर्म के देशक का प्रतीक है।

दूसरे स्वप्न में वृषभ का दर्शन, भरतक्षेत्र में बोधि बीज के वपन का प्रतीक है ।

तीसरे स्वप्न में केशरी सिंह, भगवान की शूरवीरता एवं आत्मा को नुकसान करने वाले काम-क्रोध आदि हाथियों से जगत् के जीवों के रक्षण का प्रतीक है ।

चौथे स्वप्न में लक्ष्मी देवी, तीर्थंकर की लक्ष्मी के भोग का सूचक है।

पाँचवें स्वप्न में फूल की माला, तीर्थंकर की तीन लोक में पूज्यता का प्रतीक है ।

छठे स्वप्न में चंद्र, उनकी सौम्यता एव जगत् के जीवों को शीतलता एवं आनंददायी होने का प्रतीक है ।

सातवें स्वप्न में सूर्य तीर्थंकर के भामंडल से विभूषित होने का प्रतीक है ।

आठवें स्वप्न में ध्वज उनके धर्म रूपी महल के शिखर पर स्थापना का प्रतीक है ।

नौवें स्वप्न में पूर्ण कलश के दर्शन से धर्मरूपी महल के शिखर पर स्थापित होने का प्रतीक है ।

दसवें स्वप्न में पद्मसरोवर उनके सुवर्ण कमल पर विचरण का सूचक है ।

ग्यारहवें स्वप्न में क्षीर समुद्र उनके केवलज्ञान रुप अपार ज्ञान का प्रतीक है ।

बारहवें स्वप्न में विमान उनके वैमानिक देवों से पूजित होने का प्रतीक है ।

तेरहवें स्वप्न में रत्नराशि उनके रत्न के सिंहासन पर धर्मदेशना का प्रतीक है ।

चौदहवें स्वप्न में धूम्र रहित अग्नि उनके कर्म रुपी मैल को नाश करने का प्रतीक है ।

इन चौदह स्वप्नों का समष्टिगत फल तीर्थंकर के जन्म का सूचक है । चक्रवर्ती की माता ये चौदह महास्वप्न कुछ धुंधले रूप में देखती है । इनमें से 7 स्वप्न वासुदेव की माता देखती है । 4 महास्वप्न बलदेव की माता देखती है एवं 1 स्वप्न मांडलिक राजा की माता देखती है ।

भगवान महावीर स्वामी जब माता त्रिशला के गर्भ में आए, तब उसी दिन इन्द्र की आज्ञा से तिर्यक् जृंभक देव श्री सिद्धार्थ राजा के भंडार को भरपूर कर देते हैं । परमात्मा के प्रभाव से सिद्धार्थ राजा चारों ओर से धन-धान्य, समृद्धि, यश सन्मान-सत्कार में वृद्धि होने से, भविष्य में होनेवाले पुत्र का गुणसंपन्न नाम वर्धमान रखने का निश्चय करते हैं ।

गर्भ के प्रभाव से माता त्रिशला को अनेक शुभ दोहद होते हैं । सभी जीवों को अभय दान देते हुए हिंसा पर प्रतिबंध कराने का शुभ विचार आता है । दान धर्म एवं गुरुजनों की पूजा की शुभ इच्छाओं को सिद्धार्थ राजा पूर्ण करते हैं ।

गर्भकाल पूर्ण होने पर चैत्र सुदी त्रयोदशी के शुभ दिन गर्भ के नौ महीने साढे सात दिन व्यतीत होने पर जब सभी दिशाएँ दिग्दाह आदि दोषों से रहित एवं निर्मल थीं । मंद-मंद पवन लहराता था । ऐसे समय में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर मध्यरात्रि में आरोग्यवाली त्रिशला रानी ने आरोग्य वाले पुत्र को जन्म दिया था ।

80

पर्युषण पर्व का सार है-क्षमापना

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 31-08-2019**

पर्युषण पर्व का सार है क्षमापना । भूलकर भी इन कषायों का विश्वास मत करना । ये कषाय तो कसाई से भी अधिक भयंकर हैं । कसाई तो एक ही जीवन का अन्त लाता है जबकि ये कषाय अनेक जन्मों तक आत्मा को दुःख देनेवाले हैं ।

कसाई तो पशु के द्रव्य-प्राणों का नाश करता है, जबकि ये कषाय आत्मा के भावप्राणों का नाश करते हैं ।

नदी के नीर का कभी विश्वास मत करना, क्योंकि पानी के वेग में कभी भी वृद्धि हो सकती है ।

आग की एक छोटी-सी चिनगारी की उपेक्षा मत करना, क्योंकि दिखने में छोटी-सी यह चिनगारी चन्द क्षणों में भयंकर दावानल का रुप ले सकती है और भयंकर विनाश भी ला सकती है ।

शरीर में पड़े छोटे से घाव की कभी उपेक्षा मत करना, क्योंकि दिखने में छोटा-सा घाव धीरे-धीरे बड़ा होकर भयंकर रोग या मौत का कारण बन सकता है ।

किसी से कर्ज लिया हो तो अवसर मिलते ही उस ऋण से मुक्त बनने का प्रयत्न करना । अन्यथा कुछ ही वर्षों में वह ऋण मूलधन की सीमा को लाँघ कर कई गुना हो जाएगा ।

इसी प्रकार क्रोध आदि कषायों का भूलकर भी विश्वास मत करना । क्रोध की छोटी चिनगारी को क्षमा के जल से शीघ्र शान्त नहीं किया जाय तो वह भयंकर दावानल का रूप ले सकती है और आत्मा की चिरसमाधि को क्षण में भस्मीभूत कर सकती है ।

❑ जरा नजर करना स्कन्दिलाचार्य पर ! उन्होंने अपने 500-500 शिष्यों को सुन्दर निर्यामणा कराकर सभी को शाश्वत मुक्तिधाम में

पहुँचा दिया...परन्तु क्रोध की एक चिनगारी ने उनकी समस्त साधना को भस्मसात् कर दिया और उनके संसार को बढ़ा दिया ।

❑ विषधर चण्डकोशिक सर्प जो पूर्व भव में मासक्षमण के पारणे मासक्षमण की तपश्चर्या करनेवाले महान् तपस्वी थे...एक बालमुनि पर किये गये क्रोध के कारण वे पतन के गर्त में डूब गए और साधु से भयंकर विषधर सर्प बन गए ।

विज्ञान के इस युग में वैज्ञानिक शोधों के आधार पर व्यक्ति सामान्य पानी को बर्फ बना सकता है । अरे ! अपने बैठक खण्ड/ शयन-खण्ड के कमरे को वातानुकूलित बना सकता है । परन्तु आश्चर्य है कि वह अपने क्रोध से गर्म हुए दिमाग को ठण्डा नहीं कर पाता है ।

वैज्ञानिकों का कथन है कि तीव्र प्रदूषण के कारण ओजोन में छेद पड़ गये हैं और इस कारण सूर्य की गर्मी बढ़ गई है । लगता है, सूर्य की गर्मी के साथ आज मानव के दिमाग का तापमान भी कुछ बढ़ गया है, तभी तो आज बात-बात में नगण्य निमित्तों को पाकर भी व्यक्ति आवेश में आ जाता है और कुछ-का-कुछ कर डालता है ।

आज देश में हत्या-आत्महत्याओं का जो सिलसिला चल पड़ा है, उन सबके मूल में मानव की आवेशवृत्ति ही देखने को मिलेगी । आज मानव छोटी-छोटी बातों से परेशान है । आत्महत्या तक का कठोर कदम उठा लेता है ।

नाश

क्षमा भाव रखने से वैर का नाश होता है ।
वैराग्य भाव रखने से मोह का नाश होता है
प्रेम भाव रखने से घृणा का नाश होता है ।
संतोष भाव रखने से अभिमान का नाश होता है ।
समता भाव रखने से ममत्व भाव का नाश होता है ।

81 क्षमापना सच्चे हृदयपूर्वक होनी चाहिए

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 01-09-2019**

पर्वाधिराज का मुख्य कर्तव्य है–पारस्परिक-क्षमापना । क्रोध से मानसिक सन्तुलन नष्ट हो जाता है । क्रोध से परलोक में दुर्गति होती है । क्रोध से अशुभ कर्म का बन्ध होता है । क्रोध से संसार की अभिवृद्धि होती है । इस प्रकार क्रोध के अनर्थों को जानकर उनसे मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिए । जो व्यक्ति क्षमा की याचना करता है और क्षमा प्रदान करता है, वह महान् है और जो न तो क्षमा की याचना करता है और न ही क्षमा प्रदान करता है, वह हीन है ।

यह क्षमापना हृदयपूर्वक होनी चाहिए, औपचारिक नहीं । वर्तमान युग में औपचारिकता बहुत बढ़ गई है । यदि दिल से दुश्मनी का जहर कम न हो तो वह क्षमापना, क्षमापना नहीं है ।

किसी को क्षमा प्रदान करने के बाद उसकी गल्तियों को पुनः याद नहीं करना चाहिए । क्षमा का व्यवहार करने के पश्चात् भी यदि किसी के अपराध को याद कर हम उसे टोकते रहें तो ऐसी क्षमापना का कोई अर्थ नहीं ।

पर्वाधिराज पर्युषण पर्व के संदेश-वैर का विसर्जन और सब जीवों से मित्रता को जीवन में आत्मसात् करो । तीर की तरह शब्द-बाण भी एक बार छूट जाने के बाद उसे वापस नहीं पकड़ा जा सकता ।

कंकड़ के प्रहार से कांच के टुकड़े हो जाते हैं । कटु शब्दों के प्रहार से हृदय के टुकड़े हो जाते हैं । हृदय टूट जाने के बाद उसे जोड़ना अत्यन्त ही कठिन काम है । हाँ ! इसे जोडने का एक ही साधन है-सच्ची क्षमापना । वैरभाव का विसर्जन और मैत्रीभाव का सर्जन कर जब सच्ची क्षमापना की जाती है, तब वह क्षमापना दो टूटे हृदयों को भी जोड़ देती है ।

दो टूटे हृदयों को जोड़ने का पावन पर्व अर्थात् सांवत्सरिक क्षमापना पर्व । मकान के बीच में दीवार खड़ी करने के साथ ही मकान के दो विभाग (टुकडे) हो जाते हैं । मकान की दीवार दो भाइयों के बीच बँटवारा करा देती है । दिल की दीवार दो हृदयों को विभक्त कर देती है । आओ ! पर्वाधिराज का संदेश है दिल की दीवारों को तोड़ दें । मैत्री के झरने से दिल की दीवार को साफ कर दें ।

मोह का नशा

शराब के नशे में चकचूर व्यक्ति को
सत्य का भान नहीं होता है
वह कल्पना की दुनिया में ही
खोया रहता है ।
शराब से भी भयंकर मोह का नशा है ।
इस नशे में चकचूर व्यक्ति को
आत्मा के स्वरुप का
लेश भी भान नहीं होता है ।
मोहांध आत्मा, आत्मा में नहीं,
बल्कि देह में
सुख की शोध करती है ।
परिणाम-स्वरुप वह
दुःख के ही गर्त में डूबती है ।

82 पर्वाधिराज महापर्व की सफलता का राज

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 02-09-2019**

संवत्सरी के दिन में संवत्सरी-प्रतिक्रमण का अत्यधिक महत्व है। संवत्सरी के दिन उपवास आदि तप बतलाए हैं, परन्तु उपवास न हो सके तो उसका भी विकल्प बतलाया है। उपवास न हो सके तो आयंबिल भी कर सकते हैं। आयंबिल न हो तो एकासना भी कर सकते हैं। एकासना न हो तो बियासना भी कर सकते हैं। बियासना भी न हो तो साढ़ पोरिसी, पोरिसी और अंत में नवकारसी भी कर सकते हैं। तप में इतने ढेर सारे विकल्प बतलाए हैं, परन्तु प्रतिक्रमण हेतु कोई विकल्प नहीं है। प्रतिक्रमण तो करना ही है।

संवत्सरी प्रतिक्रमण में भी प्रधानता **'परस्पर-क्षमापना'** की है। सर्व जीवों के साथ यदि हृदय से क्षमापना नहीं की है तो उस प्रतिक्रमण का भी कोई अर्थ नहीं है अर्थात् संवत्सरी प्रतिक्रमण का भी प्राण परस्पर क्षमापना ही है।

सर्व जीवों के साथ क्षमापना की तो प्रतिक्रमण सफल अन्यथा उस प्रतिक्रमण का कोई अर्थ नहीं है। पर्युषण में महत्त्वपूर्ण अहिंसा प्रवर्तन आदि पाँच कर्तव्य बतलाए हैं, परन्तु उन पाँचों के केन्द्र में अर्थात् मध्य में तीसरा कर्तव्य परस्पर क्षमापना का ही है।

जिनमंदिर में अनेक प्रतिमाएँ होती हैं। परन्तु मंदिर तो उसी भगवान का कहा जाता है जो Centre में होते हैं, केन्द्र में होते हैं। मूलनायक भगवान को हमेशा बीच में रखा जाता है। मंदिर में भगवान 5,7,9,11 कितने भी हो सकते हैं। परन्तु केन्द्र में तो मूलनायक भगवान को ही रखा जाता है। इसी प्रकार पर्युषण के 5 कर्तव्यों में केन्द्र में स्थान **'परस्पर क्षमापना'** ही है। इस अपेक्षा से भी क्षमापना का महत्व बढ़ जाता है।

साधुवंदन में क्षमा-प्रधानता: गुरु भगवन्त को वंदन करते समय

'पंचांग प्रणिपात सूत्र' बोला जाता है । उसमें **'खमासमणो'** का अर्थ है **'हे क्षमाश्रमण ।'** श्रम करे वह श्रमण कहलाता है । क्षमा धर्म को आत्मसात् करने के लिए जो निरंतर प्रयत्न करते हैं, वे क्षमाश्रमण कहलाते हैं अर्थात् साधुजीवन में क्षमा धर्म की ही प्रधानता है ।

10 यतिधर्म में पहला क्षमा धर्मः साधु के 10 यतिधर्म हैं । उन 10 धर्मों में सर्व प्रथम क्षमा धर्म ही है अर्थात् साधु को अपने जीवन में मुख्यतया क्षमा धर्म की साधना करने की है । चार प्रकार के कषायों में पहला कषाय 'क्रोध' ही है । उस क्रोध को जीतना, यही क्षमाधर्म की आराधना है ।

सच्चा सुख

इन्द्रियों के अनुकूल विषयों का सेवन
शरीर को सुख देता है,
परन्तु वह सुख आत्मा के लिए
भावी दुःख का ही आमंत्रण है ।
आत्मा का सच्चा सुख
इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त नहीं होता है,
सच्चा सुख आत्मा मे रहा हुआ है
जो आत्म-स्वरुप के चिंतन-मनन से ही
प्राप्त हो सकता है ।
दैहिक सुख के त्याग
बिना आत्मिक-सुख
को पाने की कल्पना
मृगमरीचिका ही है ।

परिशिष्ट

कोयंबत्तुर चातुर्मास का संक्षेप में
आंखों देखा हाल (अर्हद् दिव्य संदेश में से)
मरुधररत्न, गोडवाड के गौरव पूज्य आचार्यदेव
श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. आदि-5 ठाणा
एवं पू.सा. श्री उद्योतदर्शनाश्रीजी आदि-7 ठाणा का

कोयंबत्तुर में भव्य नगर प्रवेश

दि. 9 जुन 2019 जेठ सुदी-7, वि.सं. 2075 रविवार के मंगल प्रभात में चातुर्मास आयोजक रमेशजी बाफना परिवार एवं दर्शन परिवार के सदस्यों ने शकुन विधि संपन्न की । मंगल कलश धारी कुंवारी कन्याओं के शुभ शगुन के साथ पूज्यश्री ने विहार यात्रा प्रारंभ की ।

8 कि.मी. विहारकर माउंट हॉटल के पास पधारे ।

वहां रमेशजी बाफना की ओर से अल्पाहार रखा गया । ठीक 9 बजे राजस्थान जैन संघ कोयंबत्तुर की ओर से सामैया प्रारंभ हुआ । सामैये में स्थानिक बेंड व मंडल के बेंड थे । सुपार्श्वनाथ जिनालय में प्रभु दर्शन कर पूज्यश्री प्रवचन हॉल में पधारे । पूज्यश्री के मंगलाचरण बाद युवक मंडल व महिला मंडल व मुमुक्षु रक्षिता ने स्वागतगीत प्रस्तुत किया । मंच का संचालन महावीरजी आहोरवालों ने किया । फिर **1, 25, 125 में चढावा लेकर मांगीलालजी परमार-बाली** ने पूज्यश्री का गुरुपूजन किया और **रमेशजी बाफना (सादड़ी) ने 1,11,111** में चढावा लेकर पूज्यश्री को कामली बहोराई पूज्यश्री द्वारा आलेखित **'पंच प्रतिक्रमण (हिन्दी विवेचन) भाग-1'** का विमोचन राजेशजी राठोड, बाबुलालजी महेता, नथमलजी भंडारी, मदनजी भंडारी आदि ने लिया ।

चेन्नाइ से पधारे राजेशजी राठोड आदि बाली मित्र मंडल के कार्यकर्त्ताओं ने पूज्य श्री को ई.सन्. 2020 के चातुर्मास एवं उपधान के लिए हार्दिक विनती की । उसके बाद पूज्यश्री का प्रभावक प्रवचन हुआ । प्रवचन बाद अनेक महानुभावों की ओर से 50 रु. का संघ पूजन भी हुआ ।

दि. 10 जुन को पंजाब **देशोद्धारक विजयानंदसूरिजी** की 123 वीं पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में प्रातः 9.30 से 11 बजे तक गुणानुवाद सभा का आयोजन किया गया । पूज्यश्री ने उनके महान् जीवन पर सुंदर प्रकाश डाला ।

दि. 11 व 12 जुन को प्रातः 9.30 बजे पूज्यश्री का प्रभावक प्रवचन हुआ ।

राजस्थान श्वे.मू. जैन संघ की ओर से सुपार्श्वनाथ दादा के जन्म व दीक्षा कल्याणक निमित्त दि. 13 जुन से **पूज्य आचार्य श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** आदि की शुभ निश्रा में चतुर्दिवसीय महोत्सव का आयोजन किया गया ।

दि. 13 जुन को प्रातः 7 बजे कुंभ स्थापना, दीपक स्थापना व ज्वारारोपण विधि संपन्न हुई । 9.30 बजे पूज्यश्री का प्रभावक प्रवचन हुआ ।

दि. 14 जुन को प्रातः 7 से 9 बजे तक प्रभु के जन्म कल्याणक निमित्त उत्तम औषधियों से पंच-महाभिषेक किए गए । 9.30 बजे पूज्यश्री का प्रवचन हुआ, दोपहर में जिनालय में `पंच-कल्याणक पूजा' पढाई गई । प्रभुजी की भव्य आंगी व रात्रि में भक्ति भावना रखी गई । भक्ति में रमझट हेतु महीदपुर (M.P.) से संगीतकार अंकुश महेता पधारे थे ।

दि. 15 जुन को प्रभु के दीक्षा कल्याणक निमित्त प्रातः 9.15 से 11 बजे तक **अठारह पाप स्थानक निवारण भाव यात्रा** का आयोजन किया गया । सामूहिक स्तुतिगान के बाद पूज्यश्री ने सरल शैली में भाववाही विवेचन किया ।

दि. 15 को दोपहर में पाटलापूजन की विधि संपन्न हुई । दि. 16 जुन को प्रातः 9.15 से 11 तक संयम भाव यात्रा की 13 गाथाओं पर पूज्यश्री ने विवेचन किया । विजय मुहूर्त में लघु शांतिस्नात्र महापूजन पढाया गया । पूज्यश्री के सदुपदेश से आज संघ में वृत्ति संक्षेपतप के सामूहिक 7 द्रव्यों से 140 लगभग एकासने हुए । प्रभुजी अंग रचना की गई । इस प्रकार चार दिन का महोत्सव सानंद-सोन्साह संपन्न हुआ ।

दि. 17 से 21 जुन तक भी प्रतिदिन पूज्यश्री के प्रेरणादायी प्रवचन हुए । दि. 21 जुन को प्रवचन बाद शा. गौतमजी पुनमिया के गृहांगण में संघ सहित पूज्य आचार्य भगवंत के पगले हितशिक्षा प्रवचन व संघपूजन हुआ ।

दि. 22 जुन शनिवार के शुभ दिन प्रातः 8.30 बजे आर.जी.स्ट्रीट से विहारकर मार्ग में मुनिसुव्रत जिनालय के दर्शन कर ठीक 9 बजे आर.एस.पुरम् में पूज्यश्री का सामैया प्रारंभ हुआ । विविध गंहुलियों से पूज्यश्री को बधाया गया । ठीक 9.30 बजे शंखेश्वर जिनालय में प्रभु दर्शन बाद पूज्यश्री का **'प्रभु भक्ति की शक्ति'** विषय पर प्रभावक प्रवचन हुआ ।

भावाचार्य-वंदना

स्व. पू. गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् विजय हेमभूषणसूरिजी म. की 11 वीं पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में दि. 23 जुन रविवार को प्रातः 9.30 से 11.30 बजे तक पूज्यश्री की निश्रा में **'भावाचार्य वंदना'** रखी गई । बिपीनगुरुजी एवं अजीतगुरुजी के द्वारा सामूहिक स्तुति गान के बाद **पूज्य आ. श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.** ने खूब भाववाही शैली में **गौतमस्वामी, हरिभद्रसूरिजी, हेमचन्द्रसूरिजी** तथा **हीरसूरिजी** आदि महान् आचार्य के जीवन पर सुंदर प्रकाश डाला । कार्यक्रम के बाद 50 रु. का संघपूजन हुआ जिनाज्ञा परिवार की ओर से वृत्ति संक्षेप तप के नौ द्रव्यों से सामूहिक 45 एकासने एवं प्रभुजी की भव्य अंगरचना भी हुई ।

गुणानुवाद-सभा

दि. 24 जुन जेठ वदी-7 को **परम पूज्य गच्छाधिपति विजय हेमभूषणसूरीश्वरजी म.** की गुणानुवाद सभा हुई । **पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरिजी म.** ने स्व. पूज्यपादश्री के स्वाध्याय रुचि, गच्छ संचालन शक्ति, अपूर्व समाधि आदि गुणों का वर्णन किया अंत में 100 रु. का संघ पूजन हुआ ।

समूह-सामायिक

दि. 26 जुन के शुभ दिन **पू.सा. श्री कैवल्यज्योतिश्रीजी** के संयम जीवन के 8 वे वर्ष में प्रवेश निमित्त प्रवचन दरम्यान समूह सामायिक का आयोजन किया गया । पूज्यश्री ने सामायिक धर्म की महिमा समझाई । लगभग 180 आराधक जुडे-सभी को 120 रु. की प्रभावना प्रदान की गई ।

दि. 29 जुन को पूज्य आचार्य भगवंत आर.जी. स्ट्रीट-सुपार्श्वनाथ जिनालय मे पधारे । प्रातः 9.15 बजे प्रवचन हुआ ।

दिनेशभाई हनुमानमलजी बागरेचा (आहोर) के गृहांगण में अनंतनाथ प्रभु की चौथी वर्षगांठ निमित्त अठारह अभिषेक रखे गए । मंदिर में फूलों के डेकोरेशन के साथ हर्षोल्लास से 18 अभिषेक हुए । भक्ति में रमझट हेतु मुंबई से जतीन बीद पधारे थे । रात्रि में प्रभु भक्ति रखी गई ।

दि. 30 जुन को 9.15 बजे प्रवचन बाद सुपार्श्वनाथ जिनालय में महेन्द्रभाई कानानावाले की ओर से भव्य सजावट व सुप्रसिद्ध गायक जतीन बीद के भक्ति संगीत के साथ 17 भेदी पूजा पढाई गई ।

दि. 1 जुलाई सोमवार को पूज्य आचार्य भगवंत प्रातः विहार कर ठीक 7 बजे सामैया के साथ राजगुरु एपार्टमेंट में पधारे । प्रभु दर्शन के बाद 9.15 बजे पूज्य श्री का प्रभावक प्रवचन हुआ ।

जीरावला भावयात्रा

राजगुरु एपार्टमेंट में मूलनायक **'जीरावला पार्श्वनाथ'** है । पूज्यश्री के सदुपदेश से दि. 4 जुलाई गुरुवार को प्रातः 9.15 से 11 बजे तक **'जीरावला पार्श्वनाथ की भाव यात्रा'** रखी गई । संगीत की सुरावलि के साथ स्तुतिगान एवं पूज्यश्री ने भाववाही शैली में जीरावला तीर्थ की महिमा सुनाई ।

दि. 7 जुलाई के शुभदिन **सुपार्श्वनाथ नव युवक मंडल** की स्थापना के 25 वर्ष पूर्णाहूति निमित्त प्रातः 7.30 बजे पूज्य आचार्य भगवंत अरिहंत भवन से प्रभुजी के साथ वाजते-गाजते जिनालय में पधारे, फिर फल-नैवेद्य की विशिष्ट रचना के साथ स्नात्र पूजा पढाई गई पूज्यश्री ने प्रभु के जन्म कल्याणक का महत्व समझाया ।

ठीक 10.30 बजे मंडल के सभी सदस्यों के लिए पूज्यश्री का हित शिक्षा प्रवचन हुआ । पूज्यश्री ने **'जिनशासन की महिमा एवं अपना कर्तव्य'** के बारे मे विस्तार से समझाया ।

दि. 8 जुलाई को महावीर प्रभु के च्यवन कल्याणक निमित्त पूज्यश्री की निश्रा में **'च्यवन कल्याणक की भाव यात्रा'** रखी गई । **मु.श्री स्थूलभद्रविजयजी** विरचित हिन्दी भाषा में 9 स्तुतियों के समूह गान के साथ पूज्यश्री ने महावीर प्रभु के 27 भवों के वर्णन के साथ च्यवन कल्याणक का महत्त्व समझाया ।

चातुर्मास मंगल प्रवेश

श्री बहुफणा पार्श्वनाथ जिनालय निर्माण के 23 वर्षों बाद पहली बार ही पूज्यों का चातुर्मास होने से संघ में अपूर्व उत्साह था । कोयम्बतुर संघ के विविध मंडल चातुर्मास प्रवेश की पूर्व तैयारी में जुटे हुए थे ।

असाढ सुदी-9, दि. 10 जुलाई के मंगल मुहूर्त में प्रातः 7,15 बजे पूज्य आचार्य भगवंत ने सुपार्श्वनाथ जिनालय से मंगल प्रस्थान किया । ठीक 7.30 बजे आर.एस.पुरम् Area में पूज्यश्री का

प्रवेश हुआ वर्धमान ग्रांड मुनिसुव्रत जिनालय में शा. जांवतराजजी आहोरवालों की ओर से सकल संघ की सबहुमान बिठाकर नवकारसी रखी गई ।

ठीक 8 बजे पूज्यश्री का सामैया प्रारंभ हुआ सामैये में **पूज्यश्री रामचंद्रसूरिजी म.सा.** एवं **स्व. पू.पं. श्री भद्रंकरविजयजी म.सा.** की विशाल कद की तस्वीरे घोडाबग्घी में थी । नासिक के ढोल, केरल के बेंड, स्थानिक बेंड, एवं चैन्नाइ से शंखवादक की मंगलध्वनि एवं विशाल संख्या में श्रावक-श्राविकाओं की उपस्थिति में शोभा-यात्रा का प्रारंभ हुआ । शंखेश्वर एवं बहुफणा पार्श्वनाथ जिनालय दर्शन के बाद ठीक 10.15 बजे आई फाउंडेशन ग्राउंड में पधारे ।

पूज्यश्री के मंगलाचरण बाद स्थानिक महिला मंडल एवं सुप्रसिद्ध संगीतकार लखण मंदसोर के स्वागत एवं गुरु भक्ति गीत बाद शा. गुलाबचंदजी ने सभा का संचालन किया मैसूर से पधारे अशोकभाई दांतेवाडिया, थाणा से पधारे जुगराजजी पुनमिया, मुंबई से पधारे विनोदजी लोढा एवं देहु रोड से पधारे दिलीपजी आदि ने अपने हृदयोद्‌गार प्रस्तुत किए ।

उसके बाद ईरोड निवासी संतोषजी कांठेड ने 1.25 लाख में चढावा लेकर पूज्यश्री को कामली बहोराई । फिर **चातुर्मास आयोजक श्रीमती दाखीबाई चांदमलजी बाफना परिवार** के केवलचंदजी, रमेशजी, कल्पेश आदि ने पूज्यश्री का गुरुपूजन किया ।

फिर पूज्यश्री द्वारा आलेखित **पंच प्रतिक्रमण-हिन्दी विवेचन भाग-2, 3 व 4** का विमोचन जुगराजजी आदि पुनमिया परिवार, राजस्थान श्वे.मू.जैन संघ के अध्यक्ष बाबुलालजी महेता, रमेशजी बाफना, भरतजी कोठारी (बाली) संतोषजी कांठेड एवं शांतिलालजी कोचर (ईरोड) ने कर उसकी प्रतियाँ पूज्यश्री के कर कमलों में अर्पित की ।

मंच संचालक गुलाबचंदजी ने बीच बीच में पूज्यश्री के व्यक्तित्व एवं अद्‌भुत साहित्य साधना का परिचय दिया ।

अंत में पूज्य आचार्य भगवंत का प्रासंगिक प्रवचन हुआ । पूज्यश्री ने चातुर्मास की महिमा समझाई और जिनवाणी श्रवण की सुंदर प्रेरणा दी ।

उसके बाद स्थानकवासी श्रमण संघ के **वरुणमुनि** ने भी सभा को उद्‌बोधन किया । चातुर्मास प्रारंभ के साथ विविध सामुदायिक तपों की भी घोषणा की गई ।

ठीक 12.45 बजे कार्यक्रम पूर्ण हुआ । उसके बाद सामुदायिक 210 रु.का संघपूजन व चातुर्मास आयोजक परिवार की ओर से चांदी के सिक्के की प्रभावना एवं सकल संघ का स्वामी वात्सल्य हुआ । प्रवेश के इस प्रसंग पर चैन्नाई-मुंबई थाणा, पूना, राणेबेन्नुर, रोहा, बेंगलोर, मैसूर, सेलम, ईरोड आदि स्थलों से गुरु भक्त उपस्थित हुए थे ।

दि. 12 जुलाई से पूज्य आचार्य भगवंत के प्रेरणादायी प्रवचन **'राजस्थानी संघ भवन'** में चालू हुए ।

सामूहिक व्रत उच्चरण

पूज्य आचार्य भगवंत के सदुपदेश से अ.सु.-13 रविवार दि. 14-7-2019 के शुभदिन प्रातः 9 से 11.30 बजे नाण समक्ष श्रावक जीवन के अलंकार स्वरुप बारह व्रत एवं विविध तप उच्चरने की क्रिया खूब उत्साह उल्लास से संपन्न हुई । पूज्यश्रीने संक्षेप में बारहव्रतों का स्वरुप भी समझाया । लगभग 150 आराधकों ने व्रत व तप उच्चरने की क्रिया की ।

आज से संघ में 45 आगम तप का भी मंगल प्रारंभ हुआ । आगम तप में 160 आराधक जुडे । आगम तप के एकासने राजस्थानी संघ भवन में हो रहे है ।

चातुर्मास शुभारंभ

असाढ सुदी-14 दि. 15 जुलाई सोमवार चौमासी चतुर्दशी होने से प्रातः 9.15 बजे पूज्यश्री का प्रवचन प्रारंभ हुआ । पूज्यश्री ने चातुर्मास की महिमा समझाई । प्रवचन बाद चातुर्मास दरम्यान प्रवचन में पठनीय **उपदेश कल्पवल्ली** ग्रंथ पूज्यश्री को बहोराने का,

'शांत सुधारस' ग्रंथ साध्वीजी म. को बहोराने का तथा दोनों ग्रंथों की 5 ज्ञान-पूजाएं एवं अष्ट प्रकारी पूजा पढाने के चढावे बोले गए । लोगों ने चढावे आदि में उत्साह से भाग लिया । आज से संघ में सामुदायिक बीस स्थानक तप आदि 40 दिवसीय (एकांतर उपवास व बियासना) तप प्रारंभ हुआ । लगभग 60 आराधक जुडे है ।

ग्रंथ-वाचन प्रारंभ

दि. 17 जुलाई बुधवार के शुभदिन प्रातः 8.30 बजे राजस्थानी संघ भवन में **उपदेश कल्पवल्ली** एवं **शांत सुधारस** ग्रंथ की ज्ञान पूजाएं पढाई गई । ठीक 9.15 बजे पूज्यश्री को चढावे के लाभार्थी परिवार दिनेशभाई मीठालालजी ने पूज्यश्री को ग्रंथ बहोराया । पूज्यश्री ने भाववाही शैली में ग्रंथ वाचन प्रारंभ किया ।

दि. 19 जुलाई से प्रति शुक्र-शनिवार को **'जिनशासन के ज्योतिर्धर'** प्रवचन माला का शुभारंभ हुआ । आज प्रवचन में पूज्यश्री ने गौतम स्वामीजी के अनेक प्रसंगों के माध्यम से उनके जीवन की विशेषताएं बतलाई ।

प्राण तन से निकले

दि. 21 जुलाई रविवार के शुभ दिन प्रातः 8.30 बजे चतुर्विध संघ के साथ पूज्य आचार्य भगवंत श्रीमती पंकुबाई खेमचंदजी चौहान तथा जितेन्द्रभाई के गृहांगण में पगले एवं हितशिक्षा प्रवचन हुआ ठीक 9.15 बजे राजस्थानी संघ भवन में **'मृत्यु-महोत्सव'** का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ । पूज्यश्रीने समाधि मृत्यु की महिमा समझाई । उसके बाद चैन्नाइ से पधारे मोहनजी मनोजजी (फलोदीवाले) ने खूब भाववाही शैली में मृत्यु को महोत्सव बनाने के दस उपाय अनेक प्रेरक प्रसंगों के साथ समझाए । ठीक 12.30 बजे कार्यक्रम पूर्ण हुआ । अंत में लाभार्थी परिवार पंकुबाई खेमचंदजी दांतराई की ओर से 200 gm. बदाम की प्रभावना व 20 रु. का संघपूजन हुआ ।

दि. 22 जुलाई से पूज्यश्री के सदुपदेश से महामंगलकारी

सिद्धितप प्रारंभ हुआ जिसमें 28 आराधक जुडे । 25 जुलाई से प्रति गुरुवार **'प्रश्नोत्तरी प्रवचन'** प्रारंभ हुआ । जिसमें पूज्यश्रीने अनेक शंकाओं का शास्त्रीय समाधान दिया ।

दि. 28 जुलाई रविवार को प्रातः 8.30 बजे शा. मांगीलालजी परमार के घर पर पूज्यश्री के वाजते-गाजते संघ सहित पगले हुए । उसके बाद ठीक 9.15 बजे राजस्थानी संघ भवन में प्रथम **संस्कार शिबिर** का प्रारंभ हुआ । दीप प्रज्वलन, गौतम स्वामीजी की तस्वीर को माल्यार्पण के बाद गुलाबचंदजी ने मंच संचालन किया । माता-पिता पर के गीत बाद ठीक 9.45 से 11.45 तक पूज्यश्री का **'माता-पिता'** के उपकार एवं कर्तव्य विषय अत्यंत ही सरल-सुबोध व रोचक हृदयस्पर्शी प्रवचन हुआ ।

प्रवचन बाद पूज्यश्री द्वारा आलेखित **'कर्म विज्ञान'** पुस्तक की तृतीय आवृत्ति का विमोचन रमेशजी बाफना, कैलाश जैन आदि ने कर उसकी प्रति पूज्यश्री को अर्पित की । शिबिर में 900 लोगों ने भाग लिया ।

बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट की ओर से शिबिर लाभार्थी कैलाशजी मीठालालजी परिवार आदि का बहुमान किया । फिर सभी की सिटिंग से सबहुमान साधर्मिक भक्ति हुई ।

त्रिदिवसीय जिन भक्ति महोत्सव

जिनशासन के महान् ज्योतिर्धर **स्व.पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** की 28 वीं पुण्यतिथि निमित्त असाढ सुदी-12 दि. 29 जुलाई से त्रिदिवसीय महोत्सव का प्रारंभ हुआ ।

दि. 29 जुलाई को प्रातः 9.30 बजे **'श्री वर्धमान शक्र स्तव महापूजन'** प्रारंभ हुआ । पूजन हेतु रोहितभाई बेंगलोर से एवं भक्ति मे रमझट हेतु बेंगलोर से कमलेशभाई एवं मैसूर से कुणालभाई पधारे थे ।

फल-फूल एवं नैवेद्य की सुंदर रचना की गई । पूज्यश्री ने शक्रस्तव का महत्व समझाया ! ठीक 1 बजे कार्यक्रम पूर्ण हुआ ।

दि. 31 जुलाई श्रावण वदी-14 **'महाराष्ट्र देशोद्धारक'** पूज्यपादश्री की पुण्य तिथि निमित्त प्रातः 9.15 बजे गुणानुवाद सभा

हुई। **पू.आ.श्री रत्नसेनसूरिजी** ने अपने अनेक स्वानुभवों के साथ स्व. पूज्यश्री के हिमालय से विराट् और सागर से गंभीर व्यक्तित्व का परिचय दिया। फिर महोत्सव के लाभार्थी आबुगोड संघ की ओर से मिठाई की प्रभावना व 100 रु. का संघ पूजन हुआ।

प्रति शनिवार दोपहर 3 से 4.30 तक बच्चों के लिए संस्कार शिबिर भी चालू थे।

दि. 4 अगस्त रविवार को प्रातः 9.30 बजे राजस्थान संघ भवन में दूसरी **संस्कार शिबिर** का आयोजन किया गया। दीप प्रज्वलन, सरस्वती माल्यार्पण एवं गुरु भक्ति गीत के बाद 9.45 से 11.45 तक पूज्यश्री का धारा प्रवाह प्रवचन हुआ। प्रवचन का विषय था **'जीभ पर लगाम'**। पूज्यश्री ने अनेक दृष्टांत, उपदेश व युक्तियों के माध्यम से मानव को प्राप्त शब्द शक्ति के सदुपयोग व दुरुपयोग के लाभ-नुकसान समझाए।

प्रवचन बाद शिबिर लाभार्थी परिवार शा प्रकाशजी (पूजा साडी) मोकलसरवालों ओर से सभी की सन्मान सहित साधर्मिक भक्ति रखी गई। इस शिबिर में लगभग 800 लोगों ने भाग लिया।

दि. 5 अगस्त श्रावण सुदी-5 के शुभदिन 9.15 से 10.45 तक **'नेमिनाथ गिरनार की भाव यात्रा'** रखी गई। पूज्यश्री ने नेमिनाथ व गिरनार तीर्थ की महिमा समझाई।

दि. 6-7 अगस्त को सम्यक्त्व मिथ्यात्व का स्वरुप एवं अगस्त को प्रश्नोत्तरी प्रवचन एवं दि. 9-10 को शय्यंभवप्रभसूरिजी एवं **'दश वैकालिक सूत्र'** पर प्रभावक प्रवचन हुआ। दि. 10 अगस्त को जैन मेनर में प्रवचन बाद अशोकजी महेता की पुत्रवधु दीशा आशीषजी के अट्ठाई पच्चक्खाण निमित्त उनकी ओर से 20 रु. का संघ पूजन हुआ।

क्षत्रियकुंड की भाव स्पर्शना

दि. 11 अगस्त रविवार को प्रातः 9.30 से 12.15 बजे जैन मेनर पार्किंग में **'क्षत्रियकुंड की भाव यात्रा'** का बहुत ही सुंदर

कार्यक्रम रहा । केतन-कलकत्तावालें के भक्तिगीत के साथ पूज्य आचार्य भगवंत एवं मुंबई से पधारे हर्षवर्धनभाई ने अपनी संवेदनाएं प्रकट की ।

दि. 12 अगस्त से पुनः पूज्यश्री के प्रवचन 'राजस्थानी संघ भवन' में प्रारंभ हुए । आज बकरी ईद होने से पूज्यश्री के उपदेश से 260 आराधकों ने आयंबिल किए ।

दि. 15 अगस्त को प्रातः 7 बजे पूज्यश्री मासक्षमण के तपस्वी अरिहंत महेन्द्रजी नाहर के गृहांगण में राजगुरु एपार्टमेंट में सकल संघ सहित सामैया सह पधारे वहां पूज्यश्री का प्रासंगिक प्रवचन व संघपूजन हुआ । फिर 9.15 बजे राजस्थानी संघ भवन में **'प्रश्नोत्तरी-प्रवचन'** हुआ ।

तृतीय संस्कार शिबिर

दि. 18 अगस्त को प्रातः 8 बजे वाजते गाजते चतुर्विध संघ के साथ पूज्यश्री पगले हेतु शा. विजयराजजी रांका आदि के गृहांगण में पधारे, वहां गुरु पूजन-हितशिक्षा प्रवचन एवं संघ पूजन हुआ ।

ठीक 9.30 बजे राजस्थानी संघ भवन में तीसरी शिबिर का मंगल प्रारंभ हुआ । पूज्य गुरुवर्यों की तस्वीर पर माल्यार्पण बाद शिबिर संचालक गुलाबचंदजीने पृष्ठ भूमिका की, फिर भक्ति संगीत के बाद पूज्यश्री का **'धन पर लगाम'** विषय पर अत्यंत ही प्रभावशाली प्रवचन हुआ । दो घंटे तक पूज्यश्री ने अनेक पहलुओं से अर्थ की अनर्थता समझाई । अंत में शिबिर लाभार्थी श्रीमती सुखीबाई बालकचंदजी कानाना-श्रीश्रीमाल की ओर से सभी शिबिरार्थी की साधर्मिक भक्ति हुई ।

त्रिदिवसीय देव-गुरु भक्ति महोत्सव

दि. 20 अगस्त को प्रातः 7 बजे विनोदभाई पोरवाल (तखतगढ) के मासक्षमण की पूर्णाहूति निमित्त पूज्यश्री उनके गृहांगण में पधारे ।

श्रावण वदी (गु.) 5 दि. 20 अगस्त को तपस्वी सम्राट् पू. आचार्य देव श्रीमद् विजय राजतिलकसूरीश्वजी म.सा. की 21 वीं पुण्यतिथि निमित्त प्रातः 9.30 बजे गुणानुवाद-सभा का आयोजन हुआ, संघ में सामुदायिक आयंबिल हुए ।

दि. 21 अगस्त को प्रातः 9 से 11 तक **'श्रुत एवं श्रुतधर वंदना का कार्यक्रम बहुत की सुंदर रहा ।'** संगीतमय स्तुतिगान के बाद पूज्य आचार्य भगवंत ने **'श्रुत व श्रुतधरों की महिमा'** समझाई । दोपहर में 2 से 4.30 बजे तक वीरविजयजी कृत 45 आगम की पूजा पढाई गई ।

दि. 22 अगस्त को पू.सा. श्री उज्ज्वलज्योति-श्रीजी के मासक्षमण पूर्णाहूति निमित्त प्रातः 9 से 11 तक **'तप और तपस्वी वंदना'** का कार्यक्रम रहा । बेंगलोर से सुरेन्द्रगुरुजी ने भी अपनी संवेदनाएं प्रकट की ।

त्रिदिवसीय भक्ति महोत्सव का लाभ बहुफणा पार्श्वनाथ महिला मंडल ने खूब उदारता से लिया । इस प्रसंग पर जीवदया की भी अच्छी टीप हुई ।

दि. 23 अगस्त को **पू.सा.श्री उज्ज्वलज्योतिश्रीजी** के मासक्षमण पूर्णाहूति निमित्त प्रातः 7 बजे पूज्य आचार्य भगवंत चतुर्विध संघ सह वाजते गाजते मानसरोवर बिल्डींग में पधारे । वहां पूज्यश्री का प्रेरक प्रवचन व गुरु पूजन हुआ । महेन्द्रभाई बालकचंदजी आदि अनेक घरों में पूज्यश्री के पगले हुए ।

दि. 24 अगस्त को प्रातः 8.30 बजे वाजते गाजते चतुर्विध संघ के साथ पूज्य आचार्य भगवंत के पगले शा. प्रकाशजी पूजा सारीज् (मोकलसर) के गृहांगण में हुए । पूज्यश्री का प्रेरणादायी प्रवचन भी हुआ ।

ठीक 9.30 बजे राजस्थानी संघ भवन में प्रवचन बाद पंच प्रतिक्रमण सूत्र-हिन्दी विवेचन भाग-प्रथम की Open Book Exam के इनाम श्रीमती दाखोबाई चांदमलजी परिवार की से दिए गए । प्रथम स्थान पानेवाली सुरभि कांकरिया को 7000 रुपए, द्वितीय स्थान पानेवाली टीना रामसीना को 5000 रु. व तृतीया स्थान पानेवाली अंजु चोपडा को 3000 रु. का इनाम दिया गया । परीक्षा में भाग लेने वाले अन्य 50 को भी प्रोत्साहन इनाम दिया गया ।

दि. 25 अगस्त रविवार को प्रातः 8.30 बजे पूज्य आचार्य भगवंत वाजते-गाजते संघ सहित प्रवीणभाई खेमचंदजी चौहान के गृहांगण में पधारे वहाँ पूज्यश्री के पगले हितशिक्षा प्रवचन हुआ ।

चौथी संस्कार शिबिर

ठीक 9.15 बजे पूज्यश्री राजस्थानी संघ भवन में पधारे । स्वागत गीत दीप प्रज्वलन व माल्यार्पण के बाद पूज्यश्री का **'क्रोध आबाद तो जीवन बर्बाद'** विषय पर धारा प्रवाह 9.45 से 11.30 तक प्रभावक प्रवचन हुआ । पूज्यश्री ने अनेक प्राचीन अर्वाचीन दृष्टांतों के माध्यम से क्रोध के अनर्थ समझाए ।

उसके बाद पूज्यश्री द्वारा आलेखित **208 वीं पुस्तक 'श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र'** का विमोचन **शा. जावतराजजी, बाबुलालजी बागरेचा (आहोर)** ने किया और उसकी प्रति पूज्यश्री को अर्पित की । अंत में शिबिर लाभार्थी शांतिबाई गंभीरमलजी बाफना-सादडी का बहुमान एवं उनकी ओर से साधर्मिक भक्ति हुई । शिबिर संचालन गुलाबचंदजी व सुरेशजी ने किया ।

पर्वाधिराज की भव्य आराधना

दि. 26 अगस्त सोमवार से पर्युषण पर्व प्रारंभ हुआ । आज भाइयों व बहनों में 36 पौषध हुए पर्युषण के दो कर्त्तव्यों पर प्रभावक प्रवचन हुआ । प्रवचन बाद तपस्वी प्रभावना फंड हुआ तथा पूज्यश्री द्वारा आलेखित **209 वीं** पुस्तक **'मोक्षमार्ग के कदम'** का विमोचन सुखराज चंपालाल परिवार एवं मोहिनीदेवी शांतिलालजी कांकरिया-दांतराई तथा सुरेशभाई जीणालालजी ने किया । शाम का प्रतिक्रमण राजस्थानी संघ भवन में हुआ ।

दि.27 अगस्त मंगलवार पर्युषण के दूसरे दिन प्रातः9.30 से 11.15 तक पूज्य आचार्य भगवंत का पर्युषण के तीन एवं वार्षिक तीन कर्तव्यों पर प्रभावक प्रवचन हुए । पूज्यश्री ने छ'री पालक यात्रा संघ का महत्त्व समझाया ।

दि. 28 अगस्त पर्युषण के तीसरे दिन प्रातः 9.15 से 10.30 बजे तक शेष वार्षिक कर्त्तव्यों पर पूज्यश्री का प्रवचन हुआ । कोयम्बतुर से अव्वलपुनरई छ'री पालक संघ की घोषणा की गई और पहले दिन ही 3.51 के 24 नाम आ गए !

दि.29 अगस्त पर्युषण के चौथे दिन प्रातः 8.30 बजे ज्ञान पूजा आदि की विधि हुई उसके बाद ठीक 9.30 बजे पूज्यश्री ने कल्पसूत्र का पहला व्याख्यान दिया ।

कल्पसूत्र का दूसरा प्रवचन **पू.मु.श्री प्रशांतरत्नविजयजी** ने दिया । दि. 30 अगस्त पर्युषण पर्व के पांचवे दिन प्रातः 8.30 से 10.15 तक पूज्यश्री के प्रवचन बाद 14 स्वप्न दर्शन व जन्म वांचन व प्रभुजी के पालना झुलाने का कार्यक्रम हर्षोल्लास से संपन्न हुआ । ठीक 12 बजे प्रभुजी का पालना वाजते गाजते रमेशजी बाफना के वहां ले गए । वहां पूज्यश्री के संघ सहित पगले भी हुए ।

दि.31 अगस्त को प्रातः 8.30 से 11.15 बजे तक पूज्य आचार्य भगवंत का कल्पसूत्र का पांचवां प्रवचन हुआ ।

सामूहिक-पच्चक्खाण

भादो सुदी-3, दि. 1 सितंबर को 8 बजे सिद्धितप एवं अट्ठाई तथा अट्ठाई के ऊपर के तपस्वियों का वरघोडा निकला । ठीक 9.15 बजे राजस्थानी संघ भवन पहुँचा । पूज्य आचार्य भगवंत का कल्पसूत्र का सातवा प्रवचन हुआ । प्रवचन बाद पूज्यश्री ने सामूहिक पच्चक्खाण दिए । उसके बाद दिसंबर में आयोजित कोयम्बतुर से अवलपुनरइ के छ'री पालक संघ की पत्रिका के **'जय जिनेन्द्र'** का चढावा बोला गया । जिसका लाभ 16-16 में अशोकजी गुंदेशा ने लिया ।

उसके बाद बारसा सूत्र बहोराने घर ले जाने एवं पांच ज्ञानपूजा एवं अष्टप्रकारी पूजा आदि के चढावे बोले गए लोगों ने उत्साह से चढावे बोले ! उसके बाद 210 रुपए का सामूहिक संघ पूजन हुआ !

ठीक 4.30 बजे पूज्य आचार्य भगवंत चतुर्विध संघ सहित बारसासूत्र के साथ शा. भूरमलजी जोधपूरवाले के गृहांगण में पधारे । वहां गुरुपूजन हितशिक्षा प्रवचन व संघपूजन हुआ ।

स्तंभन पार्श्वनाथ जिनालय (खरतरगच्छ) में पर्युषण के 7 दिनों में पू.मु.श्री प्रशांतरत्नविजयजी, पू.मु. श्री शालिभद्रविजयजी एवं पू.मु.श्री स्थूलभद्रविजयजी ने प्रवचन दिए ।

संवत्सरी महापर्व

भादो सुदी-4 दि. 2 सितंबर का 53 भाइयों ने पौषध लिया । ठीक 8 बजे राजस्थानी संघ भवन में बारसासूत्र बहोराने, पांच ज्ञान पूजा व अष्टप्रकारी पूजा हुई । ठीक 9 बजे बारसासूत्र का वांचन प्रारंभ हुआ । अंत में चातुर्मास आयोजक रमेशभाई बाफना ने पूज्यश्री एवं सकल संघ से क्षमा याचना की पूज्यश्री ने भी क्षमा धर्म का महत्व बताकर चतुर्विध संघ से क्षमा याचना की । जीवदया आदि की भी अच्छा टीप हुई ।

शाम को ठीक 4.30 बजे संवत्सरी प्रतिक्रमण राजस्थानी संघ भवन में भाइयों का प्रारंभ हुआ । खूब शांति व अनुशासनपूर्वक 7 बजे प्रतिक्रमण पूर्ण हुआ ।

भादो सुदी-5, दि. 3 सितंबर को ठीक 8 बजे राजस्थानी संघ भवन में अट्ठम व उससे ऊपर के सभी तपस्वियों के पारणे **श्रीमती दाखोबाई चांदमलजी बाफना परिवार** की ओर से हुए ।

दि. 4 सितंबर को प्रातः 8 बजे सिद्धितप के 26 तपस्वियों के पारणे श्रीमती दाखोबाई चांदमलजी की ओर से हुए । उसके बाद भव्य वरघोडा निकला । वरघोडे बाद शा. बाबुलालजी फतेहचंदजी रांका परिवार की ओर से सकल संघ का सिटिंग से स्वामीवात्सल्य भी हुआ ।

दि.5 सितंबर को प्रातः 9.15 बजे 'तपस्वी बहुमान समारोह हुआ । चातुर्मास आयोजक परिवार ने भी सभी तपस्वियों को प्रभावना की । संघ की ओर से मासक्षमण के तपस्वी को 15,000 सिद्धितप के तपस्वी को 11,000 व अट्ठाई तपस्वी को 4,000 रु. आदि से बहुमान किया गया ।

राजस्थान पत्रिका
patrika.com
04

श्रावक का जीवन कमल समान

कोयम्बत्तूर. आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कहा कि श्रावक का जीवन कमल के समान है। जिस प्रकार कमल कीचड़ व पानी में उगता है पर पानी व कीचड़ से अलिप्त रहता है। यह अनासक्ति ही श्रावक जीवन की उत्कृष्ट साधना है।

उन्होंने मंगलवार को बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट के तत्वावधान चातुर्मास कार्यक्रम के तहत धर्मसभा को संबोधित करते हुए कहा कि धन, संपत्ति, स्त्री, वैभव व पुत्र के बीच रह कर उनसे अनासक्त रहना सामान्य साधना नहीं है।

उन्होंने कहा कि अनासक्ति के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए श्रावक जीवन के अलंकार स्वरूप बारह व्रतों का परिपालन करना होता है। श्रावक इनका पालन करे तो मौजूदा जीवन में शांति का अनुभव कर सकता है। मृत्यु के समय समाधि भाव पा सकता है। साथ ही परलोक में सद्गति और परंपरा से मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

उन्होंने कहा कि श्रावक को जीवन निर्वाह करने के लिए धन की चाह रहती है। वह माता-पिता, दादा-दादी, संतानों की जवाबदारी रखता है। जीवन निर्वाह करने के लिए किसी की याचना करे तो श्रावक को शोभा नहीं देता। इसके लिए धनार्जन करना चाहिए। श्रावक को धन रखने की छूट दी गई है। इसका अर्थ नहीं वह छल कपट, झूठ विश्वासघात करके धन अर्जित करे। उसे नीतिगत व न्याय का पालन करते हुए धन अर्जित करना चाहिए तभी इसे शांति मिलेगी। अन्याय, अनीति व पाप से अर्जित राशि से वह कभी भी आत्मिक शांति प्राप्त नहीं कर सकता। उन्होंने कहा कि श्रावक का जीवन संतोषी होता है। जीवन में वैभव, बाह्य आडम्बर, विलासिता का कोई स्थान नहीं है। उसका जीवन सादगीपूर्ण होता है। आश्रितों के पालन के लिए वह सादगीपूर्ण तरीके से धन अर्जित करता है। यदि उसे भाग्य से अधिक धन मिल जाए तो वह उसे वैभव और विलासिता के बजाय जिनशासन की आराधना प्रभावना में लगाना है। इसका अर्थ यह नहीं कि वह शासन प्रभावना के कार्यों को संपन्न कराने के लिए पाप चरणों की प्रवृत्ति करे। इस प्रवृत्ति को भुलाने से ही हमें आज कटु परिणाम देखने को मिल रहे हैं। तारक परमात्मा ने तो धन या परिग्रह को पाप कहते हुए इसके संपूर्ण त्याग की बात कही थी। बुधवार को बहुफणा पार्श्वनाथ जिनालय जैन मैनोर में सुबह 9.15 बजे से प्रवचन होंगे।

परिवर्तन

किसी पापी को देख उसके
प्रति धिक्कार भाव पैदा न करें ।
आज का पापी कल का
महाधर्मी भी हो सकता है ।

क्षमापना औपचारिक नहीं, हृदय से हो

कोयम्बत्तूर. आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कहा कि पर्वाधिराज का कर्तव्य है पारस्परिक क्षमापना। क्रोध से मानसिक संतुलन खो जाता है और परलोक में दुर्गति होती है। क्षमा हृदय से होनी चाहिए, इसमें औपचारिकता नहीं होनी चाहिए। क्रोध से अशुभ कर्म का बंध होता है। क्रोध से संसार की अभिवृद्धि होती है। क्रोध के अनर्थों को जानकर इससे मुक्त होने का प्रयास करना चाहिए।

आरएस पुरम के बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट के तत्वावधान में राजस्थानी संघ भवन में चल रहे चातुर्मास कार्यक्रम में धर्मसभा को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति की क्षमा की याचना करता है और क्षमा करता है, वह महान है। जो न क्षमा की याचना करता है और न ही क्षमा करता है, वह हीन है।

उन्होंने कहा कि दिल में दुश्मनी का जहर हो तो क्षमा करने की कोई सार्थकता नहीं है। क्षमा करने के बाद गलतियों को दोबारा याद नहीं करना चाहिए, किसी को क्षमा कर दिया और उसकी किसी बात को याद करके उसे टोकते रहें तो ऐसी क्षमा करने का कोई औचित्य नहीं है।

आचार्य ने कहा कि पर्वाधिराज का संदेश वैर का विसर्जन व सभी जीवों से मित्रता का भाव आत्मसात हो, तीर की तरह शब्द बाण भी एक बार छूट जाने के बाद पुनः हाथ नहीं आता।

उन्होंने कहा कि जिस प्रकार कंकड़ के प्रहार से कांच के टुकड़े हो जाते हैं उसी प्रकार शब्दों के प्रहार से दिल के टुकड़े हो जाते हैं। हृदय टूट जाने के बाद उसे जोड़ना कठिन है। इसे केवल सच्ची क्षमापना से ही जोड़ा जा सकता है। वैर भाव का विसर्जन कर मैत्री भाव का सृजन करने से टूटे हृदय को जोड़ा जा सकता है। टूटे हृदयों को जोड़ने का पर्व सांवत्सरिक क्षमापना पर्व है। मकान के बीच दीवार खड़ी करने से मकान दो भागों में बंट जाता है इसी प्रकार दिल की दिवार दो हृदय को विभक्त कर देती है।

प्रवचन के बाद बारसा सूत्र की पांच ज्ञान पूजा व अर्पण के चढ़ावे बोले गए। पांच दिसम्बर को होने वाली कोयम्बत्तूर से अवलपुंदरै तक पैदल छरी पालित पैदल संघ की यात्रा के लिए चढ़ावे बोले गए। 2 सितम्बर को सुबह 8.30 बजे वारसा सूत्र ग्रंथ का वाचन होगा। दोपहर 3.30 बजे संवत्सरी प्रतिक्रमण होगा। 3 सितम्बर को तपस्वियों के पारणे होंगे। 4 सितम्बर को सुबह 9 बजे रथ यात्रा व संघ स्वामी वात्सल्य होगा। 5 सितम्बर को तपस्वियों का बहुमान समारोह होगा।

परिवर्तन

वालिया लुटेरा वाल्मीकि बन गया ।
रोहिणेय चोर, अर्जुनमाली, चिलातिपुत्र
तथा दृढ़ प्रहारी जैसी पापी
आत्माएँ भी संत बन गई ।

शरीर का आकर्षण व्यर्थ

पत्रिका न्यूज नेटवर्क
rajasthanpatrika.com

कोयम्बत्तूर. जैन आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कहा कि हम बाहर कितने ही अच्छे आराधक - साधक क्यों न दिखते हों लेकिन मन के भीतर गंदगी भरी होती है। फिर भी आश्चर्य है हमें उस शरीर का आकर्षण है।

वे यहां बहुफणा उपाश्रय में चल रह चातुर्मास कार्यक्रम के तहत आयोजित धर्मसभा को संबोधित कर रहे थे। उन्होंने कहा कि कारखाने में कच्चा माल डालते हैं और बेहतर उत्पाद निकलकर बाहर आता है लेकिन मनुष्य के शरीर में इसके विपरीत होता है।

मानव शरीर से तो पशु का शरीर श्रेष्ठ है। जो तुच्छ भोजन लेकर भी श्रेष्ठ पदार्थ देते हैं। गाय घास खाती है और बदले में हमें दूध देती है। गाय के गोबर से हमें उपयोगी ईंधन मिलता है। गोबर की राख से बर्तन साफ किए जा सकते हैं। उन्होंने कहा कि जब कोई अच्छी वस्तु मानव शरीर के संपर्क में आती है तो उसे वह बिगाड़ने का कार्य करता है।

उन्होंने कहा कि कपड़े के शो रूम में पुतले को कपड़े पहनाते हैं तो उन्हें धोना नहीं पड़ता लेकिन शरीर पर धारण करने के कुछ देर बाद ही दुर्गंध आने लगती है।

अपने संपर्क में आने वाली वस्तु को बिगाड़ने का काम व मूल्यहीन बनाने का कार्य मानव शरीर करता है। फिर भी आश्चर्य है हमें उस शरीर का आकर्षण है।

प्रतिक्रमण का कोई विकल्प नहीं

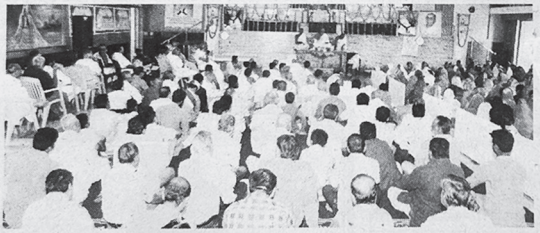

कोयम्बत्तूर. आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कहा कि संवत्सरी के दिन भी इसके प्रतिक्रमण का अधिक महत्व है। संवत्सरी के दिन उपवास किया जाए यदि उपवास संभव न हो तो आयंबिल किया जाना चाहिए। आयंबिल भी संभव न हो तो एकासना किया जा सकता है। एकासना संभव न हो तो बियासना किया जा सकता है। अंत में बियासना भी न हो तो साठ पौरिसी, पौरिसी या नवकारसी भी कर सकते हैं लेकिन प्रतिक्रमण का कोई विकल्प नहीं होता। प्रतिक्रमण तो अनिवार्य रूप से करना ही होगा।

राजस्थानी संघ भवन में बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट की ओर से चल रहे चातुर्मास कार्यक्रम में श्रद्धालुओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि संवत्सरी प्रतिक्रमण में प्रधानता परस्पर क्षमापना की है। सर्व जीवों के साथ यदि हृदय की क्षमापना नहीं की है तो उस क्षमापना की कोई सार्थकता नहीं है।

सर्व जीवों के साथ क्षमापना की तो प्रतिक्रमण सफल अन्यथा उस प्रतिक्रमण का कोई अर्थ नहीं है। पर्युषण में महत्वपूर्ण कर्तव्य क्षमापना पर्वाधिराज महापर्व के अहिंसा प्रवर्तन आदि पांच कर्तव्य बताए गए हैं। इन पांचों के केन्द्र में तीसरा कर्तव्य अर्थात परस्पर क्षमापना का ही है।

जिन मंदिर में अनेक प्रतिमाएं होती हैं। लेकिन मंदिर उन्हीं भगवान का कहा जाता है जो केन्द्र में होते हैं। मूलनायक भगवान को हमेश केन्द्र में रखा जाता है। मंदिर में अनेक भगवान हो सकते हैं लेकिन केन्द्र में मूलनायक भगवान को रखा जाता है। इसी प्रकार पर्युषण के पांच कर्तव्यों में परस्पर क्षमापना ही महत्वपूर्ण है। उन्होंने कहा कि गुरु वंदन करते समय पंचांग पणिपात सूत्र बोला जाता है। उसमें खमासमणों का अर्थ है क्षमा श्रमण। क्षमा धर्म को आत्मसात करने के लिए निरंतर किए गए प्रयास ही क्षमाश्रमण कहलाते हैं। साधु जीवन में क्षमा धर्म की प्रधानता है।

10 यति धर्म के लिए पहला क्षमाधर्म साधु के लिए 10 यति धर्म है। उन 10 धर्मों में क्षमाधर्म मुख्य साधना है।

कषायों में क्रोध पहला कषाय है इसे जीतना ही क्षमा धर्म की आराधना है। अंत में कार्यक्रम संयोजक रमेश बाफणा ने सकल संघ की ओर से क्षमापना मांगी। 3 सितम्बर को तपस्वियों के पारणे होंगे। 4 सितम्बर को सुबह 9 बजे रथ यात्रा होगी। 5 सितम्बर को तपस्वियों का बहुमान होगा।

धर्म आराधना से जीवन सफल

पत्रिका न्यूज़ नेटवर्क
rajasthanpatrika.com

कोयम्बत्तूर. जैन आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कहा कि मनुष्य का जीवन धर्म की आराधना करने से ही सफल होता हैं।

संसार में जन्मों का भ्रमण दुखदायी हैं। जब तक आत्मा का मोक्ष नहीं होता तब तक आत्मा जीव में किसी न किसी रूप में जन्म लेती रहती हैं। धर्म की आराधना करना जरुरी है,अन्यथा मनुष्य जन्म सार्थक नहीं हैं।

वे गुरुवार को यहां बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट की ओर से राजस्थानी संघ भवन में चल रहे चातुर्मास कार्यक्रम में धर्मसभा को संबोधित कर रहे थे।

जैन एनसायक्लोपिडिया अराउंड दी वर्ल्ड के लेखक डॉ. पद्मनाभन गुरुवार को राजस्थानी संघ भवन में आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर को पुस्तक की प्रति भेंट करते हुए। इस मौके पर रमेश बाफना व एम. एम. बरड़िया भी मौजूद रहे।

उन्होंने कहा कि मनुष्य का जन्म, मरण दुखदायी होने पर भी दर्शन, ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रयी की आराधना से दुखों का क्षय करके आत्मा मुक्तिपद को प्राप्त कर सकती हैं। जिनके जीवन में आराधना नहीं है वह मनुष्य जीवन के बावजूद अधोगति के गर्त में चले जाते हैं। धर्म रहित मनुष्य का पतन अधिक होता है। आचार्य ने कहा कि जैसे जीवन में युवा अवस्था महत्वपूर्ण है वैसे ही वर्ष भर में चातुर्मास महत्वपूर्ण हैं। बालक को ईनाम की, बड़ों को नाम की इच्छा होती है लेकिन धर्मी को केवल अनाम सिद्धि की आवश्यकता होती हैं।

तप करने वाले व उन्हें सहयोग देने वाले धन्य हैं। तप धर्म के अंतरायों का क्षय करता है। इससे पूर्व पर्युषण पर्व के निमित्त 4 मास क्षमण, 26 सिद्धितप, 100 से अधिक अटठाई, आदि तत्पश्चर्याओं की अनुमोदना की गई।

कार्यक्रम का संचालन सुरेश गुलेच्छा ने किया। छह सितम्बर से प्रवचन जैन मेनोत अपार्टमेंट बहुफणा मंदिर में होंगे।

शक्तियों पर विवेक का अंकुश जरुरी

उपाश्रय में प्रवचन छह से

कोयम्बत्तूर. जैन आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कहा कि शक्तियों पर विवेक का अंकुश लगाना जरुरी है अन्यथा यह विनाशकारी बन सकती हैं। वे बुधवार को यहां बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट की ओर से चल रहे चातुर्मास कार्यक्रम के तहत राजस्थानी संघ भवन में धर्म सभा को संबोधित कर रहे थे।

उन्होंने कहां कि आग जीवन देती है जीवन ले भी लेती हैं। रसोई में नियंत्रित आग भोजन पका देती है,जबकि अनियंत्रित आग जानमाल का नुकसान करती हैं। पानी भी जीवन देता है लेकिन मर्यादा से अधिक पानी बाढ़ के रूप में सब कुछ बर्बाद कर देता है। उन्होंने कहा कि मर्यादा में रहने वाली हवा प्राण वायु

का काम करती है जीवन देती है यही आंधी व तूफान के रूप में गांव के गांव उजाड़ देती हैं। इसी प्रकार युवा अवस्था में शक्तियों का उत्थान होता है। लेकिन इन शक्तियों पर विवेक का अंकुश न हो तो यह अंतरंग शत्रु आत्मा को तबाह कर देते हैं।

जैन आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर के प्रवचन छह सितम्बर से प्रतिदिन सुबह 9.15 बजे बहुफणा जैन मंदिर उपाश्रय मैनोत अपार्टमेंट में होंगे।

प्रवचन के श्रवण से शांत होती है आत्मा के कषायों की अग्नि

शोभा यात्रा में शामिल श्रद्धालु।

कोयम्बत्तूर. आचार्य विजयरत्नसेन सूरिश्वर ने बुधवार को गाज़े-बाजे के साथ आर. एस. पुरम में चातुर्मास मंगल प्रवेश किया। इससे पहले बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट की स्थापना के रजत जयंती और जिनालय की प्रतिष्ठा के 23 वर्ष पूरे होने पर आयोजित चातुर्मास के निमित्त शुभ मुहूर्त में पू मार्केट स्थित वर्धमान ग्रैंड भवन से आचार्य सहित 14 साधु-साध्वियों की चातुर्मास प्रवेश यात्रा शुरू हुई। यात्रा विभिन्न मार्गों से होते हुए आर एस पुरम पहुंची। बहुफणा पार्श्वनाथ भगवान के दर्शन के पश्चात आई फाउंडेशन मैदान में धर्मसभा हुई।

धर्म सभा को संबोधित करते हुए आचार्य ने कहा कि जैसे पारसमणि के संग से लोहा स्वर्ण बन जाता है। वैसे ही सद्गुरू के संग से पापी व्यक्ति भी पावन बन जाता है। गुरु के जरिए हमें परमात्मा व धर्म का परिचय होता है। वर्ष में तीन चातुर्मास होते हैं लेकिन आषाढ़ के चातुर्मास श्रेष्ठ होते हैं। जिस प्रकार पानी पीने से गले की प्यास शांत होती है, वैसे ही प्रवचन वाणी सुनने से आत्मा के कषायों की अग्नि से पैदा होने वाली प्यास शांत होती हैं। आत्मा पर लगे कर्मों के मैल की सफाई होती है। धन के पीछे दौड़ते हुए धर्म के अवसर को व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिए। चातुर्मास में जैसे पानी की वर्षा होती है वैसे ही जिनवाणी की वर्षा होती है। वर्षा के जल में भींग कर हमें आत्मा में स्थायी परिवर्तन लाना चाहिए। चातुर्मास के मौके पर सिद्धितप, मास क्षमण आदि तत्पश्चर्याएं कराए जाएंगे। 12 जुलाई से प्रतिदिन सुबह नौ बजे प्रवचन होंगे। 13 जुलाई को राजस्थानी संघ भवन में सुबह नौ बजे श्रावक जीवन के अलंकार स्वरूप 12 व्रत स्वीकार कराए जाएंगे।

आचार्य लिखित पांच पुस्तकों का विमोचन

गुरुवंदन और मांगलिक श्रवण के पश्चात बहुफणा महिला मंडल ने स्वागत गीत प्रस्तुत किया। ईरोड के संतोष, जीवतराज खांटेड़ परिवार ने आचार्य को कामली अर्पित की। दाखोबाई चांदमल बाफना परिवार ने गुरुपूजन किया। रमेश बाफना ने स्वागत भाषण दिया।

चेन्नई के केसरबाड़ी जैन मंदिर के ट्रस्टी शांतिलाल खांटेड ने आचार्य का परिचय दिया। मैसूरु सुमतिनाथ जैन संघ के अध्यक्ष अशोक दांतेवाड़िया ने आचार्य के गत वर्ष के चातुर्मास, उपधान तप व मैसूर में आचार्य के धर्म जागृति कार्यक्रम व आचार्य के रचित हिंदी साहित्य पर प्रकाश डाला। ट्रस्टी बाबूलाल मुणोत, दलीचंद श्रीश्रीमाल, जयंतीलाल, अमृतलाल राठौड़ के अलावा ईरोड के स्वामी जैन संघ के सचिव संतोष मेहता, ठाणे जैन संघ के पूर्व अध्यक्ष जुगराज पूनमिया, देहूरोड जैन संघ अध्यक्ष उमेश कटारिया, घाणेराव राजस्थान जैन संघ के सचिव विनोद लोढ़ा ने आचार्य के हिंदी साहित्य का परिचय दिया। कार्यक्रम में स्थानकवासी समाज के वरुण मुनि के अलावा मुंबई, भायंदर, ठाणे, पुणे, निगड़ी, देहू रोड, राणेबेन्नूर, बेंगलूरु, सेलम, चेन्नई, मैसूरु, बंगारपेट आदि क्षेत्रों से संघ के पदाधिकारी यहां पहुंचें।

इस मौके पर आचार्य लिखित 207 पुस्तकों में से पंच प्रतिक्रमण के विभिन्न भागों का बिमोचन रमेश बाफना, जुगराज, सुरेश, बाबूलाल, घीसूलाल हींगड़, संतोष खाटेड़, भरत कोठारी, राजेन्द्र लोढ़ा, हुकम चंद खांटेड़, ललित कोचर आदि ने किया।

परमार्थ वृत्ति से धर्म की शुरूआत

कोयम्बत्तूर. जैन आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कहा कि संसार के प्रत्येक जीव में स्वार्थ वृत्ति होती है। व्यक्ति स्वार्थ को देखकर अनुकूलता होने पर स्थान को पसंद करता है। इसलिए वह अपना स्थान सदैव आगे रखना चाहता है। वे शनिवार को मैनोत अपार्टमेंट में बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट की ओर से चल रहे चातुर्मास कार्यक्रम के तहत धर्मसभा को संबोधित कर रहे थे।

उन्होंने कहा कि स्वार्थवृत्ति से आत्मा का विकास नहीं हो सकता। धर्म की शुरूआत परमार्थ वृत्ति से होती है। जीवन में परमार्थ वृत्ति का विकास करने के लिए चार प्रकार के धर्म में वीतराग परमात्मा ने दान धर्म बताया है। आर्य देश की संस्कृति में भी दान वृत्ति थी। परिवार की रोटी बनाने से पहले महिलाएं गाय, श्वान आदि पशुओं की रोटी बनाती रहीं हैं। यह परमार्थ का प्रतीक है। व्यक्ति अपने हृदय से उदार बनता है। तभी वह सुख को छोड़ कर अपने कुंटुम्ब, देश, विश्व के लोगों के

सुख की चिंता कर पाता है। आचार्य ने कहा कि अरिहंत परमात्मा मात्र मनुष्य व देवों के सुख की नहीं वरन जीव मात्र के शाश्वत सुख की चिंता कर अपने जीवन में धर्म साधना के बल पर कर्मों का क्षय करते हैं और धर्म का मार्ग बताकर विश्व में सबसे बड़ा उपकार करते हैं।

उन्होंने कहा कि भूखे को भोजन, प्यासे को पानी व वस्त्र रहित व्यक्ति को वस्त्र देने से कुछ समय के लिए तो उनकी मांग पूरी हो जाती है बाद में वही स्थिति बन जाती है। मकान रहित को मकान देने से एक जन्म तक का उपकार तो हो जाता है। वैसे ही शरीर भी भाड़े के घर जैसा ही है यह तब तक साथ देगा जब पुण्यकर्म हमारे साथ हैं ।पुण्य कार्य पूर्ण होने के बाद संसार के संबंध भी पूर्ण हो जाते हैं। संसार की समस्याओं के समाधान अल्पकालीन है इसलिए वीतराग परमात्मा ने शाश्वतकालीन समस्या के समाधान के लिए मोक्ष का मार्ग बताया है। उन्होंने कहा कि संसार के सारे संबंधी स्वार्थ के मार्ग के सगे हैं। स्वार्थ पूरा होने पर कोई किसी को याद नहीं करता। धन की कमाई में भागीदार बन जाते हैं लेकिन धन की कमाई से होने वाले पाप की कमाई में कोई भागीदार नहीं बनता। संतों ने कहा कि आत्मा के विकास के लिए धर्म के मार्ग पर ही चलना होगा। धन की कमाई यहीं रह जाती है पुण्य की कमाई जन्मों तक साथ चलती है। आठ सितम्बर को अपार्टमेंट में सुबह 9 बजे आंसुओं की ताकत विषय पर प्रवचन होंगे। चैन्नई से आए भक्तों को उपधान व चैत्रमास की नवपद गोली के लिए मुहूर्त निकाला जाएगा।

आचार्य विजयरत्नसेन सूरीश्वर का प्रवचन : चातुर्मास में होती है आत्म जागृति

आसान नहीं अभिमान का त्याग

कोयम्बत्तूर. आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कहा कि मानव के लिए अभिमान का त्याग करना कठिन है और शुभ भाव आत्मा को मुक्ति के पथ पर अग्रसर करते हैं।

उन्होंने गुरुवार को आरएस पुरम स्थित बहुफणा पार्श्वनाथ जैन मंदिर में धर्मसभा को संबोधित करते हुए कहा कि मानव के मन में द्रव्य, काल, क्षेत्र और भाव का प्रभाव होता रहता है। परमात्मा, गुरूजन या अन्य महापुरूष के चित्र के समक्ष होने पर उनके जीवन के अनुसरण का भाव होता है जबकि जब हिंसा या अन्य वीभत्स दृश्य आते हैं तब मन में पाप वृत्तियां और कुसंस्कार उजागर होते हैं। धर्म अथवा वर्षावास, चातुर्मास, पर्युषण आदि पर्वों में मन शुभ भावों से भावित बनता है। मंदिर या गुरूजन के साधना स्थल पर जाने पर मन में स्वतः ही त्याग और व्रत नियम के भाव पैदा होते हैं जबकि मनोरंजन या पर्यटन स्थल पर मौज, शौक व विलासिता के विचार आते हैं। वहीं व्यापार शुरू होने पर लोभ भाव पैदा होता है। आचार्य ने कहा कि जब मन में शुभ भाव पैदा होता है तो वह

आत्मा को मुक्ति भाव के पथ पर अग्रसर करता है जबकि अशुभ भाव पैदा होते ही सब पतन के गर्त में चला जाता है। उन्होंने कहा कि मानव शब्द में मान शब्द ही अभिमान का सूचक है।

मानव के लिए सत्ता, संपत्ति व स्वजन का त्याग तो आसान है लेकिन अपने अभिमान का त्याग करना कठिन है। इसी कारण उसमें अभिमान, क्रोध, माया, लोभ के भाव पैदा होते हैं। दुनिया में हुए चार युद्ध ही इन चार कषायों के जरिए हुए। विश्व युद्ध हो या मन के लघु युद्ध, क्रोध के कारण ही होते हैं। आचार्य ने कहा कि कषायों से मुक्त होने के लिए चातुर्मास है। जिंदगी भर आराधना साधु जीवन में है। जिनके पास साधु जीवन है लेकिन योग्य शक्ति व मनोबल नहीं है तो उसे श्रावक जीवन का पालन करना चाहिए। आत्म जागृति के लिए वर्षावास का चातुर्मास महत्वपूर्ण है।

आज से धार्मिक कार्यक्रम

राजस्थानी संघ भवन में सुबह 9 बजे से प्रवचन शुरू होंगे। 14 जुलाई को श्रावक जीवन के अलंकार स्वरूप बारह व्रत स्वीकार कार्यक्रम होगा। 15 जुलाई से चातुर्मास कार्यक्रम शुरू होगा। इस दौरान सिद्धि तप, मास क्षमण तप, वीरा स्थानक तप, सम्मेत शिखर तप, 45 आगम तप आदि तत्पश्चर्या कराई जाएगी।

जिनवाणी श्रवण से मिलता है मोक्ष का मार्ग

पत्रिका न्यूज़ नेटवर्क
rajasthanpatrika.com

कोयम्बत्तूर. जैन आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कहा कि श्रावक को जिनवाणी का श्रवण अवश्य करना चाहिए। जिनवाणी की पूजा से इसका श्रवण अधिक महत्वपूर्ण है। पूजा जरुरी है लेकिन जिनवाणी व जिनपूंजन का प्रसंग एक साथ आ जाए तो जिनवाणी का श्रवण श्रेष्ठकारी है।

आचार्य गुरूवार को राजस्थानी संघ भवन में बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट के तत्वावधान में आयोजित धर्मसभा को संबोधित कर रहे थे। उन्होंने कहा कि आज के दौर में श्रावक जीवन से स्वाध्याय लगभग समाप्त हो गया है।

राजस्थानी संघ भवन में प्रवचन करते आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर।

जबकि मोक्ष मार्ग को जानने के लिए जिनवाणी सक्षम माध्यम है। इसके नियमित श्रवण से जीवन में संवेग व वैराग्य भाव बढ़ता है। मोक्ष मार्ग की आराधना के लिए गुरू व देव दोनों जरुरी है। अर्थात देव की पूजा व गुरू से जिनवाणी का श्रवण जरुरी है। जिनवाणी का श्रद्धा भाव से नियमित श्रवण किया जाए तो लाभ मिलता है। आचार्य ने कहा कि जिनवाणी के नियमित श्रवण से सम्राट कुमार पाल बारह व्रत धारी श्रावक बन गए थे।

उन्होंने उदाहरण देते हुए बताया कि एक कागज ऐसा होता है जिस पर कुछ गिरते ही सोख लेता है दूसरा प्लास्टिक कागज होता है उस पर कुछ भी गिरे वैसा ही पड़ा रहता है। इसी तरह श्रोता भी दो प्रकार के होते हैं। धर्म का श्रवण तो करते हैं लेकिन श्रवण उनके कानों को छूता है हृदय को नहीं।

21 जुलाई को सुबह नौ बजे संघ में विशेष कार्यक्रम 'जब प्राण तन से निकले' की प्रस्तुति दी जाएगी। 22 जुलाई से सिद्धि तप शुरू होगा।

सुख का मार्ग बताने वाले गुरू सबसे बड़े उपकारी

कोयम्बत्तूर. आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कहा कि प्यासे व्यक्ति को पानी पिलाने, भूखे को भोजन कराने व वस्त्र रहित को वस्त्र देने से उपकार होता है लेकिन यह अल्प अस्थायी होने से छोटे उपकार हैं। सबसे बड़े उपकारी अरिहंत परमात्मा हैं, जो हमें समस्याओं से मुक्ति दिलाकर मोक्ष की ओर ले जाता है।

आचार्य ने शनिवार को आर.एस. पुरम स्थित राजस्थानी संघ भवन में बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट के तत्वावधान में चातुर्मास कार्यक्रम के तहत आयोजित धर्मसभा को संबोधित कर रहे थे। उन्होंने कहा कि केवल्य ज्ञान होने के बाद बाद जगत में साक्षात जाकर प्रतिदिन दोपहर तक धर्मदेशना के माध्यम से जीवों को धर्म बोध देते हैं। जैसे बगीचे के विभिन्न फूलों को गूंथकर माला बनता है वैसे ही गणधर भगवंत धर्मदेशना के पदार्थ को आगम सूत्र

के रूप में गूंथते हैं। आगम सूत्रों को स्पष्ट करने के लिए अनेक आचार्य भगवंतों ने साहित्य की रचना की।

आचार्य ने कहा कि जिस प्रकार गंगा का आगम स्थान पर प्रवाह विशाल होता है लेकिन आगे चलकर छोटा हो जाता है, उसी प्रकार परमात्मा की ओर से बहने वाली श्रुतज्ञान की गंगा समय के साथ क्षीण होती गई। लेकिन, लोग जिस प्रकार गंगा को शुद्ध मानते हैं और एक पात्र में लिया जल भी उतना ही शुद्ध है, उसी प्रकार जितना भी श्रुतज्ञान हमें मिलता है वह उतना ही उपयोगी है। जिस प्रकार परमात्मा की प्रतिमा हमारे लिए पूजनीय है उसी प्रकार उनके बताए आगम ग्रंथ भी हमारे लिए पूजनीय हैं।

आचार्य ने कहा कि मोह माया से भरे इस विषम काल में आत्मा के उद्धार के लिए जिनेश्वर परमात्मा की प्रतिमा और आगम ग्रंथ आधारभूत है। ग्रंथों पर प्रवचन देने वाले गुरू भी हमारे लिए उपकारी हैं। उन्होंने कहा कि आंख खुलते ही हमें माता पिता के चरण स्पर्श करने चाहिए तथा देव गुरुओं के दर्शन के लिए प्रातः मंदिर और उपाश्रय में जाना चाहिए। रविवार से 45 आगम तप के एकासने शुरू होंगे। श्रावक जीवन के अलंकार स्वरूप बारह व्रत स्वीकार कराए जाएंगे। सोमवार से चातुर्मास प्रारंभ होंगे। इसी के साथ वीश स्थानक तप, सम्मेदशिखर तप, 20 विहरमान तप शुरू होंगे। 22 जुलाई से महामंगलकारी सिद्धि तप शुरू होगा। प्रतिदिन सुबह 9 बजे प्रवचन होंगे।

अनंत है आत्मा का सुख : आचार्य विजय रत्नसेन

पत्रिका न्यूज़ नेटवर्क
rajasthanpatrika.com

कोयम्बत्तूर. आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कहा कि दुनिया भ्रमणा है और सुख-दुख इंद्रीय शरीर के माध्यम से पता चलते हैं। वास्तविक सुख तो आत्मा का धर्म है जबकि हम मानते हैं कि इंद्रीय के अनुकूल विषय से सुख मिलता है और प्रतिकूल विषय पर दुख मिलता है।

आचार्य ने मंगलवार को बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट के तत्वावधान में आरएस पुरम स्थित राजस्थानी संघ भवन में चल रहे चातुर्मास कार्यक्रम को संबोधित करते हुए कहा कि आंखों के सामने कोई सुंदर रूप आता है तो हमें सुख मिलता है और कोई बीमार व्यक्ति आता है तो हम उसे देखना भी पसंद नहीं करते।

आचार्य ने कहा कि मनोहर वाद्य यंत्र की आवाज हमें कर्णप्रिय लगती है। इस बीच कोई कौए जैसी आवाज को हम नापसंद करते हैं। बगीचे में खिले फू ल की खुशबू पसंद है जबकि गंदगी देख कर नाक सिकोड़ते हैं। इसी प्रकार चाहे वस्त्र हो या भोजन का स्वाद जो हमारी इंद्री को पसंद है वही हमें भाता है।

आचार्य ने कहा कि सुंदर, स्पर्श, रस, गंध, रूप विषय इंद्रीय हैं। इनके सुख में सुख अल्पता है। वास्तविक सुख तो आत्मा का है जो अनंत है। संसार को केवल भौतिक सुख का ही अनुभव होता है। आत्मिक सुख का अनुभव मोक्ष में है। भौतिक सुखों का अनुभव शरीर व इंद्रियों से होता है जबकि आत्मा का सुख अनंत है व स्थायी है। मोक्ष में गई आत्मा का सुख सीमातीत है। उपमा के माध्यम से मोक्ष के सुख का वर्णन नहीं हो सकता।

अरिहंत की आज्ञा मोह के विष को उतारने के लिए परमतंत्र हैं। क्रोध-द्वेष की आग को शांत करने के लिए अरिहंत की आज्ञा शीतल जल समान है। कर्म रूपी व्याधि के उपचार के लिए अरिहंत आज्ञा श्रेष्ठ है। यह मोक्ष रूपी फल प्रदान करने वाला कल्पवृक्ष है। जो आत्मा अरिहंत की आज्ञा को भाव से स्वीकार करता है वह अल्प काल में संसार सागर पार कर लेता है।

हृदय रूपी कमल में करें नवपदों का ध्यान

कोयम्बत्तूर. जैन आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कहा कि कमल की विशेषता है कीचड़ में उगना और पानी में बढ़ना है फिर भी उनसे अलिप्त रह कर अपनी सुंदरता को बरकरार रखना है। इसी प्रकार अपने हृदय को संसार से अलिप्त रख कर हृदय रूपी कमल में अरिहंत आदि नवपदों का ध्यान करना चाहिए।

वे राजस्थानी संघ भवन में बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट के तत्वावधान में चातुर्मास कार्यक्रम के तहत आयोजित धर्मसभा को संबोधित कर रहे थे। उन्होंने कहा कि जगत में सुख का आधार पुण्य है। पुण्य का आधार धर्म है और धर्म का आधार अरिहंत परमात्मा हैं।

उन्होंने कहा कि पूर्व भव में 20 स्थानक की आराधना सभी जीवों को शाश्वत सुखी करने की शुभ भावना अरिहंत बनने का बीज है। इसमें विशिष्ट आराधना जुड़ती है तो अरिहंतों की आत्मा तीर्थंकर नाम कर्म का बंध करती है।

तीर्थंकर नाम कर्म के उदय से स्व पर का अवश्य ही हित होता है। अरिहंतों के जीवन में 34 प्रकार के विशिष्ट अतिशय होते हैं। धर्म देशना के जरिए विशेष कर मनुष्यों को उद्देश्य में रखकर धर्म देशना देते हैं। उन्होंने कहा कि संसार में कुछ भी पाने के लिए दाम चुकाना पड़ता है। मनुष्य जन्म की प्राप्ति मुफ्त में नहीं हुई है। पूर्व जन्मों के पुण्य से ही मनुष्य जन्म आर्य देश में मिला है। धर्म करने के लिए सामग्री भी पुण्य से ही मिलती है। इतना होने के बावजूद वह पांच इंद्रियों के भोग और प्रमाद वश धर्म का आचरण नहीं करता।

उन्होंने कहा कि विज्ञान के साधनों ने जीवन को आसान बनाया लेकिन वैज्ञानिक साधनों टीवी, मोबाइल आदि के कारण धर्म आराधना से दूर होकर अन्य विषयों पर ध्यान लगाते हैं। मानव जीवन पाकर व्यक्ति जीवन, सत्ता, धन शक्ति व वैभव पूरा करने में जीवन गंवा देता है। आयु पूर्ण होने पर सभी से संबंध खत्म हो जाता है। मनुष्य जीवन को सार्थक करने के लिए वीतराग परमात्मा ने नव पदों की आराधना कराई है। आराधना, साधना व उपासना कर जीवात्मा अरिहंत पदों को प्राप्त कर शाश्वत सुख को प्राप्त करती है।

प्रवचन के बाद हेम भूषण सूरि का स्मृति ग्रंथ हेम जीवन पुस्तक का विमोचन किया गया। आसोज माह की ओली के मंगल प्रारंभ के साथ नौ दिवसीय नवाह्निका महोत्सव शुरू हुआ।

क्रोध जीवन का सबसे बड़ा शत्रु

कोयम्बत्तूर.जैनाचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कहा है कि क्रोध हमारे जीवन का सबसे बड़ा शत्रु है।जीवन में आत्मसात किए सारे सद्गुणों का नाश क्रोध कर देता है। आचार्य रविवार को राजस्थानी संघ भवन में 'क्रोध आबाद तो जीवन बर्बाद' विषय पर प्रवचन कर रहे थे। उन्होंने कहा कि वैसे तो आग जीवनोपयोगी है।शरीर को टिकाने के लिए भोजन की जरूरत रहती है, जो बिना अग्नि के पकाया नहीं जा सकता।भोजन लेने के बाद पेट में रही जठर अग्नि से ही उस भोजन का पाचन होता है।लेकिन दिमाग की गर्मी हमारे जीवन में आग लगा देती है।सबसे ज्यादा खतरनाक है क्रोध की अग्नि ,जिसके जलने से जीवन जल जाता है। उन्होंने कहा कि एक छोटे तबेले में 500 गाय -भैंस शांति से जीवन बिता सकती है. पर राजमहल जैसे मकान में पांच व्यक्ति भी शांति से नहीं रह सकते। बड़े लोगों के के झगड़ों का मुख्य कारण धन -सत्ता और स्त्री है।जिनके पीछे बड़े-बड़े घमासान युद्ध हुए हैं।आचार्य ने कहा किस जड़ पदार्थों के प्रेम के पीछे जीवात्मा के प्रति द्वेष करना मूर्खता है।फिर भी धन-सम्पति के अधिकार को पाने के लिए भाई-भाई, पिता-पुत्र आदि निकट सम्बन्धी भी कोर्ट में केस लड़ कर जीवन भर के सम्बन्ध का अंत कर देते हैं।

कोयम्बत्तूर में रविवार को आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर की पुस्तक का विमोचन करते समाज के लोग।

उन्होंने कहा कि व्यक्ति की मृत्यु के बाद किसी भी धर्म के लोग मुर्दे को नहीं रखते । कोई जला देता है तो कोई दफना देता है। वैसे ही वैर भाव का मुर्दा हमारे हृदय में संभाल कर नहीं रखना चाहिए।बल्कि क्षमा के द्वारा उसका नाश कर देना चाहिए।

आचार्य ने कहा कि हमें अपने स्वयं के जीवन में क्षमा भाव रखना चाहिए। आने वाली हर तकलीफें मात्र हमारे पाप कर्मों का परिणाम हैं।हमारे द्वारा किसी के प्रति कोई भी अपमान किया गया हो तो उससे क्षमा मांगनी चाहिए और कोईहमसे क्षमा मांगे तो उनके अपराधों को माफ कर देना चाहिए।क्रोध का मुख्य कारण है ,अपेक्षाओं का भंग। जब किसी के प्रति रही अपेक्षा भंग होती है तब मन में क्रोध भाव पैदा होता है।जो जीवन के आनंद को नष्ट कर देता है।जीवन में प्रयत्न करने पर भी जब असफलता हाथ लगती है तो उसके कारण में जुड़े सभी लोगों पर अपार द्वेष और क्रोध पैदा होता है।

उन्होंने कहा कि जीवन में आचारों को बदलने की बजाय हमें हमारे विचारों को बदलना चाहिए।जब विचार बदलते हैं तब मन के भीतर शुभ भाव पैदा होते हैं।एक शुभ भाव अनेक शुभ भावों को पैदा करता है।जो आगे बढ़ कर सर्व कर्म से मुक्ति प्रदान करके मोक्ष देने में समर्थ है।प्रवचन के पश्चात जैनाचार्य द्वारा आलेखित 208 वीं पुस्तक 'श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र - हिन्दी विवेचन' का विमोचन जावतराज जुहारमल ने किया।सोमवार सुबह सवा नौ बजे प्रवचन के बाद आचार्य की एक और पुस्तक का विमोचन होगा।

क्रोध

क्रोध कषाय प्रत्यक्ष और परोक्ष में हानिकारक है । क्रोध से सेवन से शरीर में ताप पैदा होता है, अतः प्रत्यक्ष नुकसान है । क्रोध की विद्यमानता में दुर्गति के आयुष्य का बंध होता है, अतः परलोक को बिगाड़ता है । क्रोध का अनुबंध भव की परंपरा को बढ़ानेवाला है ।

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न, पू.आ. श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा मुख्यतया हिन्दी भाषा में आलेखित 244 पुस्तकों में से उपलब्ध एवं अवश्य पठनीय साहित्य-सूची

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	चिंतन का अमृत-कुंभ	80/-	42.	बीसवी सदी के महान योगी	300/-
2.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-1)	100/-	43.	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-
3.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-2)	100/-	44.	आध्यात्मिक पत्र	60/-
4.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-3)	125/-	45.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
5.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-4)	135/-	46.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
6.	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	150/-	47.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
7.	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	400/-	48.	श्री नमस्कार महामंत्र	180/-
8.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-	49.	महामंत्र की अनुप्रेक्षाएँ	150/-
9.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-	50.	नमस्कार मीमांसा	150/-
10.	विविध-तपमाला	100/-	51.	परमेष्ठि-नमस्कार	180/-
11.	विवेकी बनो	90/-	52.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	200/-
12.	प्रवचन-वर्षा	60/-	53.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-1	200/-
13.	आओ श्रावक बनें !	25/-	54.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-2	200/-
14.	व्यसन-मुक्ति	100/-	55.	सज्झायों का स्वाध्याय	100/-
15.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-	56.	वैराग्य-वाणी	140/-
16.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (41 से 57)	275/-	57.	सम्यग्दर्शन का सूर्योदय	160/-
17.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (58 से 80)	280/-	58.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	200/-
18.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-	59.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	240/-
19.	समाधि मृत्यु	80/-	60.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-
20.	Pearls of Preaching	60/-	61.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें !	150/-
21.	New Message for a New Day	600/-	62.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-
22.	Panch Pratikraman Sootra	100/-	63.	मन के जीते जीत है	80/-
23.	अमृत रस का प्याला	300/-	64.	प्रातः स्मरणीय महापुरुष भाग-1	300/-
24.	ध्यान साधना	40/-	65.	प्रातः स्मरणीय महापुरुष भाग-2	300/-
25.	आग और पानी-भाग-1-2	115/-	66.	प्रातः स्मरणीय महासतियाँ भाग-1	280/-
26.	शांत सुधारस-हिन्दी -भाग-1-2	140/-	67.	प्रातः स्मरणीय महासतियाँ भाग-2	300/-
27.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-	68.	इन्द्रिय पराजय शतक	150/-
28.	प्रेरक-प्रवचन	80/-	69.	संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	160/-
29.	जीव विचार विवेचन	100/-	70.	वैराग्य-शतक	140/-
30.	नवतत्त्व विवेचन	110/-	71.	आनन्दघन चौबीसी विवेचन	200/-
31.	दंडक सूत्र विवेचन	90/-	72.	धर्म-बीज	140/-
32.	लघु संग्रहणी	140/-	73.	45 आगम परिचय	200/-
33.	तीन भाष्य (हिन्दी विवेचन)	150/-	74.	चौथा कर्मग्रन्थ	140/-
34.	कर्मग्रन्थ (भाग-1)	160/-	75.	पाँचवाँ कर्मग्रन्थ	160/-
35.	दूसरा कर्मग्रन्थ	55/-	76.	छठा-कर्मग्रन्थ	210/-
36.	गणधर-संवाद	80/-	77.	नित्य देववंदन	निशुल्क
37.	आओ ! उपधान पौषध करें !	55/-	78.	श्री भद्रंकर प्रश्नोत्तरी	170/-
38.	मोक्ष मार्ग के कदम	120/-	79.	अध्यात्मयोगी से प्रश्नोत्तर	160/-
39.	विविध देववंदन	100/-	80.	तीसरा कर्मग्रन्थ	90/-
40.	संस्मरण	50/-	81.	कोयंबत्तुर-प्रवचन	150/-
41.	भव आलोचना	10/-			

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दिव्य सन्देश प्रकाशन C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. M. 8484848451 (only whatsapp)

Kamal PRINTER'S M. 9820530299